जीवित-हिन्दी

(प्रथम भाग)

संग्रहकर्त्ता

श्री लक्ष्मी चन्द्र खुराना

B A HONS (SANSKRIT), M A

LECTURER IN SANSKRIT HINDI AND PUNJABI

GOVT INTERMEDIATE COLLEGE

GUJRAT

LATE ALEXANDRA RESEARCH SCHOLAR

UNIVERSITY OF THE PUNJAB

हिन्दी भवन

हास्पिटल रोड, लाहौर

सजिल्द १॥)

प्रकाशक.—
हिन्दी भवन
हास्पिटल रोड, लाहौर

मुद्रक —
विद्याप्रकाश प्रेस
चगड मुहल्ला, लाहौर

भूमिका



कहा जाता है कि साहित्य एक आईना है जिस मे जाति विशेष के तत्कालीन उच्च नीच भावो का, उस के धार्मिक विचारो और सामाजिक सगठन का, उस के ऐतिहासिक घटना-चक्रों और राजनैतिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है । १६वीं शताब्दी की भारतीय धार्मिक-क्रान्ति का चित्र, भक्तशिरोमणि सूर, रामभक्त तुलसी और प्रभुचरणानुरागिनी मीरा की कविताओं में पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हो रहा है। बिहारी और देव की शृङ्गारी कविता तत्कालीन परिस्थिति का ही जीता जागता चित्र है, और भूषण की वीर रस की कविता भी मानो शिवा जी के आन्तरिक भावों का बाह्य रूप ही है। यहाँ तक कि समस्त हिन्दी साहित्य मे ही नहीं वरन् प्राचीन भारतीय साहित्य मे जो सासारिकता के भावो का अभाव दृष्टिगोचर होता है, वह हमारे जीवन मे आध्यात्मिकवाद के आधिक्य और सासारिकता के अभाव को सूचित कर रहा है।

१८वीं शताब्दी मे हमारा पाश्चात्य जातियो से घनिष्ठ सम्पर्क आरम्भ होता है। उस के साथ ही पाश्चात्य सासारिकता के भाव हमारे जातीय जीवन में प्रवेश करना प्रारम्भ करते हैं। उन भावो का प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पडता है । हमारा साहित्य भी आध्यात्मिकता को छोड़ लौकिकता की ओर झुकता है। उसी के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य में पद्य के स्थान पर गद्य का प्राबल्य

प्रारम्भ होता है, और पद्य के भी विषयो मे परिवर्त्तन शुरू होता है। नये भावों को प्रकट करने के लिए भाषा की नयी शैली, नये शब्दो और नये मुहावरो की आवश्यकता होती है, इस लिए ज्यों ज्यों भावो में परिवर्त्तन आता जाता है त्यो त्यों भाषा का रूप भी बदलता जाता है।

यद्यपि हिन्दी गद्य की वास्तविक उत्पत्ति अभी पिछली शताब्दी से ही होती है पर इसी बीच में इस में घोर परिवर्त्तन हो गया है, प्रैस और पत्र-पत्रिकाओ के प्रचार ने यह परिवर्त्तन और भी अधिक प्रबलता से हुआ है। यही कारण है कि आज हिन्दी व्याकरण राजा शिवप्रसाद के फारसी व्याकरण के अनुसार बने हुए वाक्यो और पंडित प्रताप नारायण मिश्र के "रिपि" तथा "रिचा" इत्यादि शब्द प्रयोगों का प्रबल प्रतिवाद कर रहा है। यहाँ तक कि वर्त्तमान गद्य प्रणाली के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की वाक्य रचना तथा लिङ्ग प्रयोग भी स्थान स्थान पर आधुनिक व्याकरण की कसौटी पर ठीक नहीं उतरते। अतएव इस परिवर्त्तन को ध्यान मे रखकर हम हिन्दी के आधुनिक काल को तीन भागो में विभक्त कर सकते हैं—पहला सैय्यद इंशा अल्लाह या लल्लूलाल से हरिश्चन्द्र तक। इस काल में ही गद्य की उत्पत्ति होती है। यद्यपि इस काल से पहले भी कई विरले गद्य लेखक हुए हैं परन्तु गद्य की उत्तरोत्तर वृद्धि इसी काल मे प्रारम्भ होती है, पर हरिश्चन्द्र तक इस की कोई शैली निश्चित नहीं होती। एक ओर लल्लूलाल गद्य में भी ब्रजभाषा मिश्रित पद्यात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं। दूसरी ओर राजा शिव प्रसाद की भाषा में फारसी और अरबी के शब्द बहुतायत मे पाये जाते हैं, और स्थान स्थान पर

उन की वाक्य-रचना भी फारसी व्याकरण के अनुसार होती है। अन्त में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र गद्य की एक शैली निश्चित करने में सफल होते हैं और वे पद्य का भी रूप बदल देते हैं। अत वे ही आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता कहे जाते हैं। इस तरह भारतेन्दु से दूसरा काल प्रारम्भ होता है जिसे हम श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी से पहले तक मानते हैं। इस काल में हास्य रस की प्रधानता रहती है और कहीं कहीं ग्रामीणता की पुट भी पायी जाती है। द्विवेदी जी से एक नया युग प्रारम्भ होता है इसे ही हम 'जीवित हिन्दी' काल समझते हैं। इस काल की लेखन शैली पूर्व काल से बहुत अधिक परिपक्व हो चुकी है, नये नये मुहावरों का प्रचार होरहा है, भाषा के सौष्ठव पर पर्याप्त ध्यान दिया जारहा है, और प्राय सब विषयों पर ग्रंथ रचे जाने लगे हैं।

प्रस्तुत संग्रह में हमने इसी काल के कुछ प्रमुख लेखकों की लेखनशैली का परिचय देने का प्रयत्न किया है।

अब तक हिन्दी में जितने भी गद्य-पद्य-संग्रह हैं उनमें एक बड़ा भारी दोष यह रहा है कि प्राय उन सब में 'हरिश्चन्द्र' काल के लेखकों की ही नहीं वरन् राजा शिवप्रसाद इत्यादि के लेखों की भी भरमार रहती है जो कि साहित्य में पर्याप्त स्थान रखते हुए भी आधुनिक व्याकरण तथा वाक्य-रचना शैली के अनुसार ठीक नहीं कहे जा सकते। किशोरावस्था में विद्यार्थी प्राय जो कुछ पढ़ते हैं या जिस लेखनशैली को देखते हैं, वे स्वय भी उसी का अनुकरण करना प्रारम्भ कर देते हैं। अत जहा वे आधुनिक साहित्य से अपरिचित रहते हैं, वहा उन के लेखों में स्वभावत वे अशुद्धिय

आ जाती हैं जो कि उन पूर्ववर्ती लेखको के लेखों में पायी जाती हैं। एक दो सुयोग्य सग्रहकर्त्ताओ ने इस दोप को दूर करने का प्रयत्न तो किया है परन्तु उन्होंने भी इसमे अधिक परिश्रम नहीं किया। सामने पडी हुई माधुरी और सरस्वती की फाइल में उन्हें जो लेख अच्छा प्रतीत हुआ उसे ही उन्होंने अपने सग्रह में सम्मिलित कर दिया। किसी किसी ने तो अपने सग्रह को वगला के अनुवादों से ही भर दिया है। उन में से किसी ने यह विचार करने का कष्ट नहीं उठाया कि उस लेख या कविता में कितनी मौलिकता है ? उस लेखक की भाषा प्रामाणिक समझी जाती है कि नही ? उस कवि की कविता साहित्य की कसौटी पर परखी जा चुकी है या नहीं ? तथा किशोर विद्यार्थी उस लेख को समझ भी सकते हैं या नहीं ?

इन्हीं दोपों को दूर करने के लिए हमने इस में उन्हीं लेखको के लेखों का समावेश किया है, जिन की भाषा और शैली अब तक टकसाली कही जा सकती है, या जो अपने विषय के वही प्रमुख लेखक हैं, तथा जिनकी लेखन शैली का अनुकरण कर विद्यार्थी शुद्ध हिन्दी लिखना तथा भिन्न भिन्न विषय पर अपने विचार प्रकट करना सीख सकते हैं। इस प्रकार समसामयिक सत्साहित्यिकों के लेखों द्वारा विद्यार्थियों को कितना लाभ हो सकता है इसका अधिक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं।

लेखों के विषयो पर भी पूरा ध्यान दिया गया है। विद्यार्थी-उपयोगी प्राय सब विषयो का इस में समावेश किया गया है। साराश यह कि हर तरह से प्रस्तुत सग्रह को एक उत्तम पाठ्यपुस्तक बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है।

इस के अतिरिक्त प्रत्येक लेखक और कवि का संक्षिप्त परिचय भी यथास्थान दे दिया गया है जिस से विद्यार्थी आधुनिक हिन्दी के प्रमुख लेखकों और उनकी अन्य रचनाओं से भी परिचित हो सकें।

इस संग्रह में हम प० पद्मसिंह शर्मा, श्री जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी इत्यादि कई प्रमुख लेखकों के लेख नहीं दे सके, क्योंकि या तो उनकी भाषा क्लिष्ट थी या उन का कोई ऐसा लेख नहीं मिला जो इस संग्रह मे दिया जा सकता। दूसरे भाग में उनके लेख देने का विचार है। पद्य भाग में कुछ छायावादी कवियो को छोड़ कर प्राय सब प्रमुख कवियों के नमूने दे दिये गये हैं, विद्यार्थियों के लिए छायावाद की कविताओ को समझना अति कठिन है इस लिए वे छोड दी गई हैं।

लेखकों के लेखों को संग्रह के अनुकूल बनाने के लिए कई जगह आदि या अन्त से काट छांट की गई है पर कहीं भी उन के शब्दों या भावों में परिवर्त्तन नहीं किया गया।

अन्त में हम उन पुस्तक लेखकों तथा पत्र पत्रिकाओं के सम्पादकों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं जिन से हमें इस संग्रह के तैयार करने में सहायता मिली है, विशेषत हम श्री लक्ष्मीधर जी बाजपेयी के चिर आभारी रहेंगे, जिन्होंने "कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर" कीजीवनी खास तौर पर इस संग्रह के लिए लिख कर दी है।

गुजरात
६-१०-२८

संग्रहकर्त्ता

विषय-सूची

गद्य-भाग

पद्य-भाग

जीवित-हिन्दी



योग्यतानुकूल व्यवसाय चुनना

(श्रीयुत माधवराव सप्रे)*

हर एक मनुष्य के लिए किसी न किसी व्यवसाय, रोजगार, धंधे अथवा पेशे की आवश्यकता है और अपने लिए बुद्धिमत्तापूर्वक व्यवसाय चुनने में ही मनुष्य-जीवन का सफल होना न होना अवलम्बित है। ऐसे बहुत ही थोडे-हजारों में एक-मनुष्य होंगे जिन्हें जीवन-निर्वाह के लिए कुछ उद्योग नहीं करना पडता अर्थात जिन के पास आवश्यकता से बहुत ही अधिक सम्पत्ति होती है। परन्तु ऐसे मनुष्यों को भी अपने लिए कुछ न कुछ कार्य चुनने की आवश्यकता पडती है। इस का कारण यह है कि ऐसे मनुष्यों को उदरपूर्ति के लिए

---

*जन्मकाल १९ जून, १८७१ ई०। मृत्युकाल २३ एप्रिल १९२६ ई०। आप महाराष्ट्र थे फिर भी आप राष्ट्र भाषा हिन्दी के कट्टर पुजारी थे। और हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक थे। "हिन्दी केसरी" इत्यादि कई पत्रों का आपने सम्पादन किया। लोकमान्य तिलक के विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ गीतारहस्य का आपने ही हिन्दी में अनुवाद किया। पञ्चदश-अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के आप सभापति हुए थे। आपने निम्नलिखित ग्रन्थ लिखे और अनुवाद किये हैं। आत्मविद्या, दासबोध, भारतीय युद्ध, जीवनसंग्राम में विजय प्राप्ति के उपाय, महाभारत मीमांसा।

भले ही कष्ट न उठाना पडे, परन्तु अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए तथा उसे आलस्य से बचाने के लिए, इच्छा न होने पर भी, कुछ काम करना ही पड़ता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जीवन काम करने के लिए ही बनाया गया है, और धनवान् तथा धनहीन कोई भी मनुष्य इस से बच नहीं सकता।

यद्यपि इस बात की सत्यता निर्विवाद सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ व्यवसाय या कार्य करना ही पडेगा, तथापि बहुत से युवको को इस बात मे डर और घृणा होती है। वे अपने माता पिता का पिंड नहीं छोडना चाहते और रोटी के प्रश्न को स्वय हल करने मे बेइज्जती समझते हैं। परन्तु उन्हे भी कभी न कभी, जल्दी अथवा देरी से, कुछ कार्यारम्भ करना ही पडता है। इस लिए प्रत्येक युवक का जो ससार मे प्रवेश करके विजय-कामना रखता हो, यह कर्त्तव्य है कि वह शीघ्र ही इस बात का निश्चय कर ले कि वह अपनी सारी शक्तियो को किस काम मे लगावेगा। अनिश्चित अवस्था मे रह कर विलम्ब करने और व्यर्थ समय खोने मे कुछ लाभ न होगा।

— बहुत से मनुष्य सुख का अर्थ नहीं समझते। वे कार्य के अभाव अर्थात् आलस्य के साथ समय विताने को सुख का साधन समझते हैं। यह एक बडी भारी भूल है। कहा जाता है कि उद्योग रहित और कार्यहीन मनुष्यो का मन शैतान का निवास स्थान होता है। भारतवर्ष के एक बडे भारी अधिकारी को यह आज्ञा मिली कि "अब तुम्हारे नौकरी के दिन पूरे हो गये। तुम ने ईमानदारी से काम किया इस के उपलक्ष्य में तुम्हें पेन्शन मिला करेगी।" जब उसे यह आज्ञा मिली तब वह बहुत ही खुश हुआ। खुशी इस बात की

थी कि उसे अब काम नहीं करना पड़ेगा और मजे में दिन काटने का अवसर मिला करेगा। उस ने खुशी के आवेश में अपने एक मित्र को यह पत्र लिख भेजा "अब मैंने दिन भर के झंझटों से छुट्टी पाई। रात दिन काम करने से जी ऊब गया था। अब मुझे दस गुनी तनख्वाह मिले तो भी मैं काम न करूंगा।" दो चार आठ दिन बीत जाने पर जब उसे बैठे बैठे खराब मालूम होने लगा और जब उस ने देखा कि काम किये बिना आलस्यपूर्ण जीवन बड़ा ही दुखदायी होता है, तब उस ने फिर अपने उस मित्र को शोक के साथ लिखा कि "भाई! मैं मूर्खता से यह समझता था कि काम न करने ही मे आनन्द है। परन्तु बात बिल्कुल उलटी है। अब मुझे साफ साफ मालूम हो रहा है कि मेरा पूर्व जीवन बहुत ही उत्तम और सुख पूर्ण था। जितना ही अधिक काम करना पडता था उतना ही अधिक सुख मिलता था।" साराश यह है कि हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहना मनुष्य के देहधर्म के विरुद्ध है। मनुष्य का मन पनचक्की के समान है। जब उस में गेहू डालते जाओगे तब वह गेहू को पीस कर आटा बना देगी। परन्तु जब उस में गेहू न डालोगे तब वह स्वय अपने आप को पीस पीस कर क्षीण बना डालेगी। एक तत्वज्ञानी के इस कथन से हम भी पूर्णतया सहमत हैं कि "बहुत कम मनुष्य लोभ के कारण जुआरी या शराबी हुआ करते हैं। उन में से अधिकाश ऐसे मनुष्य हुआ करते हैं जो कुछ काम न करने के कारण केवल समय बिताने के लिए ही जुआ खेलते या शराब पीते हैं।

जब यह निर्विवाद सिद्ध है कि काम न करना अथवा आलस्य-पूर्ण जीवन बिता देना देहधर्म के विरुद्ध है, तब हमारा यही

कर्त्तव्य है कि हम कुछ न कुछ अच्छा व्यवसाय अपने लिए पसन्द करें। यह व्यवसाय हमारे मन, इच्छा, कार्यशक्ति और स्वभाव के अनुकूल होना चाहिए। स्वाभाविक प्रवृत्ति के प्रतिकूल व्यवसाय करने में सफलता कभी हो नहीं सकती। विचार करने की बात है कि जिस मनुष्य को ईश्वर ने जन्म-सिद्ध चित्रकार बना कर भेजा है उसे यदि किसी कारण से उस का पिता विश्वविद्यालय में पढा पढा कर डिगरी दिलाना चाहे तो यह कभी हो सकता है? इधर प्रोफेसर साहब उस किताब की बडी बडी बातें समझावेंगे और इधर वह लडका प्रोफेसर साहब की भिन्न भिन्न अवस्थाओं और हलचलों का चित्र अपने मन में खींचता जावेगा। मनुष्य-जीवन के असफल होने के दो मुख्य कारण हैं—पहला यह कि वह कभी कभी अपनी स्वाभाविक कार्य शक्ति के विरुद्ध व्यवसाय में लग जाता है। दूसरा कारण यह है कि मनुष्य व्यवसाय कुशल हुए बिना ही अपने कार्य्यों को शुरू कर देता है। परन्तु जब तक कार्य कुशलता और कामचलाऊ अनुभव न हो जाय तब तक सहसा कोई काम शुरू न करना चाहिए। यह सच है कि अनुभव और कुशलता जल्द नहीं आती परन्तु इन्हे दृष्टि के बाहर जाने नहीं देना चाहिए।

ऊपर कहा जा चुका है कि जीवन सग्राम में मनुष्य अमुक दो कारणों से अकृतकार्य होता है। परन्तु हमारे भारतवर्ष में एक और तीसरा कारण देखा जाता है। इस देश के लिखे पढे शिक्षित लोग केवल मानसिक और मौखिक कार्य करना अधिक पसन्द करते हैं। उन लोगों में शारीरिक व्यवसायों से एक प्रकार की घृणा उत्पन्न होगई है। ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते

हैं। एक मनुष्य आठ रुपये माहवार में म्युनिसिपल नाके का मुन्शी बन कर कान में कलम दबा रखने में अपने जीवन की सार्थकता समझता है, परन्तु अन्य शारीरिक कार्य करके अधिक द्रव्य पैदा करने में उसे लज्जा मालूम होती है। भारतवर्ष में बाबू साहिबी की बीमारी दिनों दिन बढ़ रही है और शोक के साथ कहना पड़ता है कि यदि किसी ने इस मर्ज की दवा शीघ्र न निकाली तो यह बीमारी असाध्य हो जायगी। स्मरण रहे कि शारीरिक श्रम करने से और अपनी कर्मेन्द्रियों को किसी उपयोगी कार्य में लगा देने से ही शिक्षित समाज अपने देश के लिए आदर्श हो सकता है। विद्यार्थियों को उचित है कि वे इस बात पर ध्यान दें और शारीरिक श्रम से घृणा न करें।

ऊपर इस बात की आवश्यकता बतलाई जा चुकी है कि हर एक मनुष्य को अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति और कार्य शक्ति के अनुकूल व्यवसाय चुनना चाहिए। अतएव जो मनुष्य संसार में सफलता प्राप्त करना चाहता है, उस का पहला कर्तव्य इस बात का ज्ञान प्राप्त करना होगा कि उसकी रुचि किन कार्यों की ओर अधिक है। बहुत से मनुष्य इस बात की कोई आवश्यकता नहीं समझते कि कोई भी युवक अपनी प्रवृत्तियों को जान कर उनके अनुसार काम करे। उन का यह सिद्धान्त है कि हर एक मनुष्य कोई भी कार्य कर सकता है। अपनी प्रवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल परिश्रम करना पड़ेगा। लार्ड चेस्टर-फील्ड का भी यही मत था। वे कहा करते थे कि अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों तथा कार्य शक्तियों को जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। कोई भी युवक केवल परिश्रम से विद्वान्, सुवक्ता, राज-

नीतिज्ञ, यशस्वी, खूबसूरत इत्यादि सभी कुछ (परन्तु कवि नहीं) बन सकता है। बल्कि वे यहा तक कहते थे कि मिहनत करने पर मनुष्य यदि अच्छा कवि न भी बन सके, तो खासा तुकबन्द अवश्य बन सकता है। उन के कथन का साराश यही है कि कोई भी मनुष्य कवि, ग्रन्थकार राजनीतिज्ञ अर्थात् कुछ भी बनाया जा सकता है। अपने इसी सिद्धान्त के अनुसार लार्ड चेस्टर फोल्ड ने अपने लड़के स्टैनहाप को जो कि बड़ा सुस्त, कार्य-शिथिल और असावधानतापूर्ण था, एक समय-सूचक सत्पुरुप बनाना चाहा। उन्होंने इस के लिए वर्षों तक परिश्रम किया। परन्तु फल वही हुआ जो ऐसी अवस्थाओं में सदैव हुआ करता है। लड़का उम्र भर ज्यों का त्यों रहा। उस की योग्यता न बढी। इस लिए स्वाभाविक प्रवृत्तियो का जानना परम आवश्यक है, और इस के जानने में कोई कठिनाई भी नहीं है। प्राय हर एक लड़के की बाल्यावस्था के कार्यों से यह जाना जा सकता है कि वह भविष्य मे किस तरह का मनुष्य होगा। जो लड़का कालिदास बनने को पैदा हुआ है वह छोटी उम्र मे भी अच्छी कविता कर सकता है। जो भविष्य में शिवाजी बनता है वह बचपन मे लड़कों की सेना बना बना कर सेनापति का कार्य भी किया करता है। और जो भविष्य में विख्यात अमीर ठग बनता है वही लड़का बचपन मे पहले पहल "भुट्टे चुरा कर" अपना पहला पाठ सीखता है। कहने का तात्पर्य यही है कि किसी की बाल्यावस्था के कार्यों और प्रवृत्तियों को देख कर यह सरलता पूर्वक जाना जा सकता है कि यह लड़का आगे चल कर किस प्रकार का मनुष्य होगा।

जब यह मालूम हो जाय कि अमुक लड़के की अच्छी प्रवृत्ति

किस ओर है, तब सब मे आवश्यक कार्य यह रह जाता है कि उस को उसी कार्य में अच्छी शिक्षा मिले। अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अनुकूल योग्य और उदार शिक्षा पाने पर मनुष्य अपने व्यवसाय मे थोडे ही परिश्रम से सर्वश्रेष्ठ हो सकता है। हा, कभी कभी यह भी देखा जाता है कि किसी मनुष्य के भविष्य जीवन का पूर्व प्रतिबिम्ब उस की बाल्यावस्था में नहीं दीखता। परन्तु ऐसे अपवादात्मक उदाहरण बहुत कम पाये जाते है।

जिस तरह इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु मे एक एक विशेष गुण रहता है उसी तरह प्रत्येक मनुष्य में भी कुछ विशिष्ट कार्य करने की शक्ति अवश्य ही रहती है। यह शक्ति अथवा स्वाभाविक प्रवृत्ति चाहे किसी विशिष्ट अवस्था अथवा परिस्थिति में न भी मालूम हो सके, परन्तु वह ऐसी दृढ और उत्कट होती है कि वह आप ही आप प्रकट हो जाती है। उसे कोई छिपा नहीं सकता।

जब हम अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार कोई व्यवसाय चुनलें तब फिर हमें उस मे हजारों बाधाओं के होने पर भी लगे रहना चाहिए। बहुधा युवावस्था में कुछ कष्ट, उदासीनता अथवा अकृतकार्यता होने से युवकगण हताश होकर अपने इच्छित व्यवसाय को यह समझ कर छोड देते हैं कि कदाचित वे किसी दूसरे व्यवसाय में लग जाने से अधिक सफलीभूत होंगे। परन्तु यह बडी भारी भूल है। हमें सर्वदा यही उचित है कि हम जिस धन्धे को अपने लिए एक बार चुन लें फिर उसे कभी न छोडे, उसी में दृढतापूर्वक लगे रहें। जीवन समर में विजय प्राप्त करने के लिए अपनी प्रवृत्तियों के अनुकूल व्यवसाय चुनने की जितनी आवश्यकता है उससे बढ कर उस में दृढतापूर्वक लगे रहने की भी है। कठिना-

इयों के उपस्थित होने पर यह विचार करना मूर्खता है कि हम किसी दूसरे व्यवसाय में अधिक सफल हुए होते। जब अपने व्यवसाय को छोड कर दूसरे धन्धों मे लगने के लिए जी ललचाता है तब उस दूसरे धन्धे के केवल गुण और लाभ ही दृष्टिगत हुआ करते हैं और अपने धन्धे के केवल दोष और हानि। पर ऐसा होना सम्भव नहीं है। हम जिस गुलाब को देखेंगे उसी में काटे मिल सकते हैं। इस लिए अपने एक बार के दृढ निश्चित व्यवसाय को बिना समझे बूझे कभी नहीं छोड़ना चाहिए। नहीं तो लेने के देने पड जायेंगे और यही हालत होगी कि "खुदा ही मिला न विसाले सनम। न इधर के हुए न उधर के हुए।" इसलिए हमे किसी व्यवसाय के चुनने अथवा छोडने मे चञ्चलता अथवा जल्दी नहीं करनी चाहिए। कभी कभी जब मनुष्य अपने व्यवसाय मे हजार प्रयत्न करने पर भी सफल नहीं होता तब उसे अपना व्यवसाय बदल कर दूसरा चुनने की आवश्यकता अवश्य होती है। परन्तु इस मे यह भी सिद्ध होता है कि उस ने अपने व्यवसाय को चुनने में बड़ी ग़लती की। ऐसी गलतिया कई कारणों से बुरी सगति, अचानक घटना, माता पिता की बुद्धिहीनता अथवा अधूरी शिक्षा के कारण बहुधा हुआ करती हैं। परन्तु युवावस्था मे मन बहुत चचल रहता है। किसी काम को खूब सोच समझ कर करना चाहिए। प्राय ऐसा भी देखा जाता है कि अनेक युवक उस कार्य को करते हैं जिस में वे कभी सफल नहीं हो सकते और कुछ युवक भ्रमवश उस व्यवसाय को छोड बैठते हैं जिस में थोडे ही अधिक परिश्रम से वे सफलीभूत हो गये होते। ध्यान रखने की बात है कि जो व्यवसाय किसी भी दृष्टि से जितना ही अधिक अच्छा होगा, उस में

सफलता प्राप्त करने के लिए उतना ही अधिक समय और परिश्रम भी लगेगा। हां, जिस राह से हम जा रहे हैं उस राह में यदि सिंह मिल जाय तो हमारा यह सोचना बिल्कुल स्वभाविक होगा कि उस रास्ते के सिवा संसार के अन्य किसी रास्ते में सिंह आ ही नहीं सकता, परन्तु बिना परिश्रम के कुछ भी नहीं मिल सकता। इस लिए बाधाओं का सामना करते हुए अपने एक बार के चुने हुए व्यवसाय में दृढतापूर्वक लगे रहना श्रेयस्कर है। इसी तत्त्व के आधार पर हमारे पूर्वजों ने वर्णाश्रम धर्म की रचना की है, जिससे समाज के सब व्यवसाय उचित रीति से हुआ करें। और इसी तत्त्व के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है कि "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"।

इस लेख को समाप्त करने के पहले विद्यार्थियों को यह बतला देना आवश्यक है कि तुम्हें इच्छा अथवा आवश्यकता के कारण जिस व्यवसाय को करना पडे उसे तुम घृणा की दृष्टि से मत देखो। बहुत से युवक अपनी योग्यता की डींग हांके बिना सन्तुष्ट नहीं होते। वे कहा करते हैं कि यदि हम उस व्यवसाय में न होते तो बहुत ही यशस्वी होते। उनका ईश्वर के सामने यही रोना रहता है कि उस ने हम को अपनी अपूर्व योग्यता का प्रकाश करने का अवसर ही न दिया। अपने साथियों से सदैव अपनी योग्यता के विषय में व्याख्यान देकर ऐसे युवक कहा करते हैं कि हमें अपनी योग्यता को बरबाद करना पड रहा है, ग्रहदशा अच्छी नहीं है, साधन और संयोग प्रतिकूल हैं इत्यादि। परन्तु यह युवकों की बडी भारी भूल है। इस तरह के प्रलापों के कारण दुनिया उन्हें आत्म प्रशंसक समझ कर उन का तिरस्कार करेगी क्यों कि दुनिया की तो

इसलिए कि यह जगमगाहट मानो उसे चिढा रही थी। एक समय यह था जब कि ईर्षा भी उसे देख कर हाथ मलती थी, और एक समय यह है जब कि घृणा भी उस पर कटाक्ष करती है। द्वार पर द्वारपाल की जगह अब मदार और एरण्ड के वृक्ष खडे थे। दीवानखाने में एक मतग साँड अकडता था। ऊपर के घरो में जहाँ सुन्दर रमणियाँ मनोहारी सगीत गाती थीं, वहाँ आज जगली कबूतरों के मधुर स्वर सुनाई देते थे। किसी विधवा स्त्री के हृदय की भाँति उसकी दीवारें विदीर्ण हो रही थीं। पर समय को हम कुछ कह नहीं सकते। समय की निन्दा व्यर्थ और भूल है, यह मूर्खता और अदूरदर्शिता का फल था।

अमावस्या की रात्रि थी। प्रकाश से पराजित होकर मानो अन्धकार ने उसी विशाल भवन में शरण ली थी। पण्डित देवदत्त अपने अर्द्ध अन्धकार वाले कमरे मे मौन परन्तु चिन्ता में निमग्न थे। आज एक महीने से उन की पत्नी 'गिरिजा' की जिन्दगी को निर्दय काल ने खिलवाड बना लिया है। पण्डित जी दरिद्रता और दुःख को भुगतने के लिए तैयार थे। भाग्य का भरोसा उन्हें धैर्य

लिए उपन्यास य ता प्राय म ही ए और आजकल भा बगला आदि अन्य भाषाओं के सन्मुख रखने लायक कोई उपन्यास हैं तो आपके ही हैं। आपकी मुख्य २ रचनाए निम्नलिखित हैं —

उपन्यास—रगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, प्रेमाश्रम, सेवासदन

गल्पों के सग्रह—नवनिधि, सप्तसरोज प्रेमप्रसून, प्रेमपूर्णिमा, प्रेमपचीसी।

बँधाता था। किन्तु यह नई विपत्ति सहनशक्ति से बाहर थी। बेचारे दिन के दिन गिरजा के सिरहाने बैठ कर उस के मुरझाए हुए मुख को देख कर कुढ़ते और रोते थे। गिरिजा जब अपने जीवन से निराश होकर रोती तो वह उसे समझाते—गिरिजा, रोओ मत, तुम शीघ्र अच्छी हो जाओगी।

पण्डित देवदत्त के पूर्वजों का कारोबार बहुत विस्तृत था। वे लेन देन किया करते थे। अधिकतर उन के व्यवहार बड़े बड़े चकलेदारों और रजवाड़ो के साथ थे। उस समय ईमान इतना सस्ता नहीं बिकता था। सादे पत्रों पर लाखों की बातें हो जाती थीं। मगर सन ५७ ईस्वी के बलवे ने कितनी ही रियासतों और राज्यों को मिटा दिया और उन के साथ तिवारियों का यह अन्न-धनपूर्ण परिवार भी मट्टी में मिल गया। खजाना लुट गया, बही खाते पसारियो के काम आए। जब कुछ शान्ति हुई, रियासतें फिर सँभलीं तो समय पलट चुका था। वचन लेख के अधीन हो रहा था, तथा लेख में भी सादे और रंगीन का भेद होने लगा था।

जब देवदत्त ने होश सभाला तब उस के पास इस खँडहरे के अतिरिक्त कोई सम्पत्ति न थी। अब निर्वाह के लिए कोई उपाय न था। कृषि में परिश्रम और कष्ट था। वाणिज्य के लिए धन और बुद्धि की आवश्यकता थी। विद्या भी ऐसी नहीं थी कि कहीं नौकरी करते, परिवार की प्रतिष्ठा दान लेने में बाधक थी। अस्तु, साल में दो तीन बार अपने व्यवहारियो के घर बिना बुलाए पाहुनो की भाति जाते और जो कुछ विदाई तथा मार्ग-व्यय पाते उसी पर गुजरान करते। पैतृक प्रतिष्ठा का चिन्ह यदि कुछ शेष था तो वह पुरानी चिट्ठी पत्रियों का ढेर तथा हुंडियो का पुलिन्दा

जिन की स्याही भी उन के मन्द भाग्य की भाँति फीकी पड गई थी। पण्डित देवदत्त उन्हें प्राण से भी अधिक प्रिय समझते थे। द्वितीया के दिन जब घर घर लक्ष्मी की पूजा होती है, पण्डित जी ठाठ बाठ से इन पुलिन्दो की पूजा करते। लक्ष्मी न सही, लक्ष्मी का स्मारक चिन्ह ही सही। दूज का दिन पण्डित जी की प्रतिष्ठा के श्राद्ध का दिन था। इसे चाहे बिडम्बना कहो, चाहे मूर्खता, परन्तु श्रीमान पण्डित महाशय को उन पत्रो पर बडा अभिमान था। जब गाँव में कोई विवाद छिड जाता तो यह सडे गले कागजों की सेना ही बहुत काम कर जाती और प्रतिवादी शत्रु को हार माननी पडती। यदि सत्तर पीढियो से शस्त्र की सूरत न देखने पर भी लोग क्षत्रिय होने का अभिमान करते हैं, तो पण्डित देवदत्त का उन लेखो पर अभिमान करना अनुचित नही कहा जा सकता जिन मे ७० लाख रुपयों की रकम छिपी हुई थी।

(२)

वही अमावस्या की रात्रि थी। किन्तु दीपमालिका अपनी अल्प जीवनी समाप्त कर चुकी थी। चारो ओर जुआरियो के लिए यह शकुन की रात्रि थी, क्योंकि आज की हार साल भर की हार होती है। लक्ष्मी के आगमन की धूम थी। कोडियो पर अशर्फियाँ लुट रही थीं। भट्टियों मे शराब के बदले पानी बिक रहा था। पण्डित देवदत्त के अतिरिक्त कस्बा में कोई ऐसा मनुष्य नहीं था, जो कि दूसरों की कमाई समेटने की धुन में न हो। आज भोर से ही गिरिजा की अवस्था शोचनीय थी। विषम ज्वर उसे एक एक क्षण में मूर्छित कर रहा था। एकाएक उसने चौंक कर आँखे खोलीं और अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा—आज तो दिवाली है।

देवदत्त ऐसा निराश हो रहा था कि गिरिजा को चैतन्य देख कर भी उसे आनन्द नहीं हुआ। बोला—हाँ, आज दिवाली है। गिरिजा ने आँसू भरी दृष्टि से इधर उधर देख कर कहा—हमारे घर में क्या दीप न जलेंगे ?

देवदत्त फूट फूट कर रोने लगा। गिरिजा ने फिर उसी स्वर में कहा—देखो, आज बरस के दिन घर अन्धेरा रह गया। मुझे उठा दो, मैं भी अपने घर में दीये जलाऊँगी।

ये बातें देवदत्त के हृदय मे चुभी जाती थीं। मनुष्य की अन्तिम घडी लालसाओं और भावनाओ में व्यतीत होती है।

इस नगर मे लाला शङ्करदास अच्छे प्रसिद्ध वैद्य थे। वे अपने प्राण सजीवन औपधालयो में दवाओं के स्थान पर छापने का प्रेम रक्खे हुए थे। दवाइया कम बनती थीं, किन्तु इश्तिहार अधिक प्रकाशित होते थे।

वे कहा करते थे कि बीमारी केवल रईसों का ढकोसला है और पोलिटिकल एकानोमी (अर्थशास्त्र) के मतानुसार इस विलास पदार्थ से जितना सम्भव हो टैक्स लेना चाहिए। यदि कोई निर्धन है तो हो। यदि कोई मरता है तो मरे। उसे क्या अधिकार है कि वह बीमार पडे और मुफ्त में दवा करावे ? भारतवर्ष की यह दशा अधिकतर मुफ्त दवा कराने से हुई है। इस ने मनुष्यों को असावधान और बलहीन बना दिया है। देवदत्त महीने भर से नित्य उन के निकट दवाई लेने आता था, परन्तु वैद्य जी कभी उस की ओर इतना ध्यान न देते थे कि वह अपनी शोचनीय दशा प्रकट कर सके। वैद्य जी के हृदय के कोमल भाग तक पहुचने के लिए देवदत्त ने बहुत कुछ हाथ पैर चलाये। वह आँखों में आँसू भरे

आता, किन्तु वैद्य जी का हृदय ठोस था उस मे कोमल भाग था ही नहीं।

वही अमावस्या की डरावनी रात थी। गगन मण्डल मे तारे आधी रात के बीतने पर और अधिक प्रकाशित हो रहे थे, मानो श्रीनगर की बुझी हुई दीपावली पर कटाक्ष युक्त आनन्द के साथ मुसकुरा रहे थे। देवदत्त एक बेचैनी की दशा में गिरिजा के सिरहाने से उठे और वैद्य जी के मकान की ओर चले। वे जानते थे कि लाला जी बिना फीस लिए कदापि न आयेंगे, किन्तु हतारा होने पर भी आशा पीछा नहीं छोडती। देवदत्त कदम आगे बढाते चले जाते थे।

(३)

हकीम जी उस समय अपने रामबाण 'बिन्दु' का विज्ञापन लिखने में व्यस्त थे कि इतने में देवदत्त ने बाहर से आवाज दी वैद्य जी बहुत खुश हुए। रात के समय उन की फीस दुगनी थी। लालटेन लिए हुए बाहर निकले तो देवदत्त रोता उन के पैरों से लिपट गया और बोला—वैद्य जी, इस समय मुझ पर दया कीजिए। गिरिजा अब कोई सायत की पाहुनी है, अब आप ही उसे बचा सकते हैं। यों तो मेरे भाग्य मे जो लिखा है वही होगा, किन्तु इस समय तनिक चल कर आप देख लें तो मेरे दिल की दाह मिट जायगी। मुझे धैर्य हो जायगा कि उस के लिए मुझ से जो कुछ हो सकता था मैंने किया। परमात्मा जानता है कि मैं इस योग्य नहीं हू कि आप की कुछ सेवा कर सकूँ, किन्तु जब तक जीऊँगा आप का यश गाऊँगा और आप के इशारों का गुलाम बना रहूगा।

हकीम जी को पहले कुछ तरस आया किन्तु वह जुगुनू की

चमक थी जो शीघ्र स्वार्थ के विशाल अन्धकार में लीन होगई।

(४)

वही अमावस्या की रात्रि थी। वृक्षो पर भी सन्नाटा छा गया था। जीतने वाले अपने बच्चो को नींद मे जगा कर इनाम देते थे। हारने वाले अपनी रुष्ट और क्रोधित स्त्रियों से क्षमा के लिए प्रार्थना कर रहे थे। इतने मे घण्टों के लगातार शब्द वायु और अन्धकार को चीरते हुए कान मे आने लगे। उन की सुहावनी ध्वनि इस निस्तब्ध अवस्था मे अत्यन्त भली प्रतीत होती थी। यह शब्द समीप होते गये और अन्त में पण्डित देवदत्त के समीप आ कर उस के खण्ड-हरे मे डूब गये। पण्डित जो उस समय निराशा के अथाह समुद्र मे गोते खा रहे थे शोक मे इस योग्य भी नहीं थे कि प्राणों से भी अधिक प्यारी गिरिजा की दवा दरपन कर सकें। क्या करे। इस निठुर वैद्य को यहा कैसे लावें? जालिम मैं सारी उमर तेरी गुलामी करता। तेरे इश्तिहार छापता। तेरी दवाइया कूटता। आज पण्डित जी को को यह हासमय ज्ञान हुआ है कि सत्तर लाख की चिट्ठी-पत्रियां इतनी कौडियो के मोल की भी नहीं। पैतृक प्रतिष्ठा का अहकार अब आखों मे दूर हो गया। उन्हो ने उस मखमली थैले को सन्दूक से बाहर निकाला और उन चिट्ठी पत्रियों को जो बाप दादे की कमाई का शेषांश थीं, और प्रतिष्ठा की भाति जिन की रक्षा की जाती थीं, वे एक एक कर के दीया को अर्पण करने लगे। जिस तरह सुख और आनन्द से पालित शरीर चिता की भेंट हो जाता है, उसी प्रकार यह कागजी पुतलियाँ भी उस प्रज्ज्वलित दीया के धधकते हुए मुह का ग्रास बनती थीं। इतने में किसी ने बाहर से पण्डित जी को पुकारा। उन्हों ने चौंक कर सिर उठाया। वे नींद से जागे,

अँधेरे मे टटोलते हुए दरवाजे तक आये तो देखा कि कई आदमी हाथ में मशाल लिये हुए खडे हैं और एक हाथी अपनी सूँड से उन एरण्ड के वृक्षों को उखाड रहा है, जो द्वार पर द्वारपालो की भाँति खडे थे। हाथी पर एक सुन्दर युवक बैठा हुआ है, जिस के सिर पर केसरिया रङ्ग की रेशमी पाग है। माथे पर अर्द्धचन्द्राकार चन्दन, भाले की तरह तनी हुई नोकदार मोछें, मुखारविन्द से प्रभाव और प्रकाश टपकता हुआ, कोई सरदार मालूम पडता था। उस का कलीदार अँगरखा और चुनावदार पैजामा, कमर में लटकती हुई तलवार, और गर्दन में सुनहरे कण्ठे और जंजीर उस के सजीले शरीर पर अत्यन्त शोभा पारहे थे। पण्डित जी के देखते ही उस ने रकाब पर पैर रक्खा और नीचे उतर कर उन की वन्दना की। उस के इस विनीत भाव से लज्जित हो कर पण्डित जी बोले—आपका आगमन कहा से हुआ?

नवयुवक ने वडे नम्र शब्दों में जवाब दिया। उस के चेहरे से भलमनसाहत बरसती थी—मैं आप का पुराना सेवक हूँ। दास का घर राजनगर में है। मैं वहाँ का जागीदार हू। मेरे पूर्वजों पर आप के पूर्वजो ने वडे अनुग्रह किये हैं। मेरी इस समय जो कुछ प्रतिष्ठा और सम्पदा है, सब आप के पूर्वजों की कृपा और दया का परिणाम है। मैंने अपने अनेक स्वजनो से आप का नाम सुना था और मुझे बहुत दिनों से आप के दर्शनो की कांक्षा थी। आज वह सुअवसर भी मिल गया। अब मेरा जन्म सफल हुआ।

पण्डित देवदत्त की आँखों में आँसू भर आये। पैतृक प्रतिष्ठा का अभिमान उन के हृदय का कोमल भाग था।

वह दीनता जो उन के मुख पर छाई हुई थी थोडी देर के लिए

निदा हो गई। वे गम्भीर भाव धारण कर के बोले—यह आप का अनुग्रह है जो ऐसा कहते हैं। नहीं तो मुझ जैसे कपूत में तो इतनी भी योग्यता नहीं है जो अपने को उन लोगों की सन्तति कह सकूं। इतने में नौकरों ने आगन में फर्श बिछा दिया। दोनों आदमी उस पर बैठे और बातें होने लगीं। वे बातें जिन का प्रत्येक शब्द पंडित जी के मुख को इस तरह प्रफुल्लित कर रहा था जिस तरह प्रात-काल की वायु फूलों को खिला देती है। पण्डित जी के पितामह ने नवयुवक ठाकुर के पितामह को पच्चीस सहस्र रुपये कर्ज दिये थे। ठाकुर अब गया में जा कर अपने पूर्वजों का श्राद्ध करना चाहता था, इस लिए जरूरी था कि उस के जिम्मे जो कुछ ऋण हो उस की एक एक कौड़ी चुका दी जाय। ठाकुर को पुराने बही-खाते में यह ऋण दिखाई दिया। पच्चीस के अब पचहत्तर हजार हो चुके थे। वही ऋण चुका देने के लिए ठाकुर २०० मील से आया था। धर्म ही वह शक्ति है जो अन्तःकरण में ओजस्वी विचारों को पैदा करती है। हां, इस विचार को कार्य में लाने के लिए एक पवित्र और बलवान् आत्मा की आवश्यकता है। नहीं तो वे ही विचार क्रूर और पापमय हो जाते हैं। अन्त में ठाकुर ने पूछा—आपके पास तो वे चिट्ठियां होंगी ?

देवदत्त का दिल बैठ गया। वे सँभल कर बोले—सम्भवतः हों। कुछ कह नहीं सकते। ठाकुर ने लापरवाही से कहा—ढूंढिए, यदि मिल जाँय तो हम लेते जाँयगे।

पण्डित देवदत्त उठे। लेकिन हृदय ठंडा हो रहा था। शंका होने लगी कि कहीं भाग्य हरे बाग न दिखा रहा हो। कौन जाने वह पुर्जा जल कर राख हो गया या नहीं। यह भी तो नहीं मालूम

कि वह पहले भी था या नहीं। यदि न मिला तो रुपये कौन देता है। शोक ! दूध का प्याला सामने आ कर हाथ से छूटा जाता है। हे भगवन ! वह पत्री मिल जाय। हम ने अनेक कष्ट पाये हैं। अब हम पर दया करो। इस प्रकार आशा और निराशा की दशा में देवदत्त भीतर गये और दीया के टिमटिमाते हुए प्रकाश में बचे हुए पत्रों को उलट पलट कर देखने लगे। वे उछल पड़े और उमङ्ग में भरे हुए पागलों की भाँति आनन्द की अवस्था में दो तीन बार कूदे। तब दौड़ कर गिरिजा को गले से लगा लिया, और बोले—प्यारी यदि ईश्वर ने चाहा तो तू अब बच जायगी। इस उन्मत्तता मे उन्हें एक दम यह नहीं जान पड़ा कि 'गिरिजा' अब वहां नहीं है, केवल उस की लोथ है।

देवदत्त ने पत्री को उठा लिया और द्वार तक वे तेजी से आये मानो पाँव मे पर लग गये हैं। परन्तु यहां उन्हों ने अपने को रोका और हृदय मे आनन्द की उमड़ती हुई तरग को रोक कर कहा—यह लीजिए, वह पत्री मिल गई। सयोग की बात है, नहीं तो सत्तर लाख के कागज दीमको के आहार बन गये।

आकस्मिक सफलता मे कभी कभी सन्देह बाधा डालता है। जब ठाकुर ने उस पत्री के लेने को हाथ बढ़ाया तो देवदत्त को सन्देह हुआ कि कहीं वह उसे फाड़ कर फेंक न दे। यद्यपि यह सन्देह निरर्थक था, किन्तु मनुष्य कमजोरियों का पुतला है। ठाकुर ने उन के मन के भाव को ताड़ लिया। उस ने बेपरवाही से पत्री को लिया और मशाल के प्रकाश में देख कर कहा—अब मुझे पूर्णविश्वास हुआ। यह लीजिए, आप का रुपया आप के समक्ष है, आशीर्वाद दीजिए कि मेरे पूर्वजों की मुक्ति हो जाय।

यह कह कर उस ने अपनी कमर मे एक थैला निकाला और उस में से एक एक हजार के पचहत्तर नोट निकाल कर देवदत्त को दे दिये। पण्डित जी का हृदय बडे वेग मे धडक रहा था। नाडी तीव्र गति से कूद रही थी। उन्हों ने चारों ओर चौकन्नी दृष्टि से देखा कि कहीं कोई दूसरा तो नहीं खडा है और तब काँपते हुए हाथों मे नोटों को ले लिया। अपनी उच्चता प्रकट करने की व्यर्थ चेष्टा में उन्हों ने नोटों की गणना भी नहीं की। केवल उडती हुई दृष्टि से उन्हें देखा और जेब में डाल दिया।

(५)

वही अमावस्या की रात्रि थी। स्वर्गीय दीपक भी धुंधले हो चले थे। उन की यात्रा सूर्यनारायण के आने की सूचना दे रही थी। उदयाचल फिरोजा बाना पहन चुका था। अस्ताचल में भी हलके श्वेत रङ्ग की आभा दिखाई दे रही थी। पण्डित देवदत्त ठाकुर को विदा करके घर में चले। उस समय उन का हृदय उदारता के निर्मल प्रकाश से प्रकाशित हो रहा था। सत्यनारायण की कथा धूमधाम से सुनने का निश्चय हो चुका था। गिरिजा के लिए कपडे और गहने के विचार ठीक हो गये। अन्तःपुर में पहुँचते ही उन्होंने शालिग्राम के सम्मुख मनसा वाचा कर्मणा सिर झुकाया और तब शेष चिट्ठी-पत्रियों को समेट कर उसी मखमली थैले में रख दिया। किन्तु अब उन का यह विचार नहीं था कि सम्भवतः उन मुर्दों में भी कोई जीवित हो उठे। वरन् जीविका से निश्चिन्त हो अब वे पैतृक प्रतिष्ठा पर अभिमान कर सकते थे। उस समय वे धैर्य और उत्साह के नशे में मस्त थे। बस, अब मुझे जिन्दगी में अधिक सम्पदा की जरूरत नहीं। ईश्वर ने मुझे

इतना दे दिया है। इस में मेरी और गिरिजा की जिन्दगी आनन्द से कट जायगी। उन्हें क्या खबर थी कि गिरजा की जिन्दगी पहले कट चुकी है। उन के दिल मे यह विचार गुदगुदा रहा था कि जिस समय गिरिजा इस आनन्द-समाचार को सुनेगी उस समय अवश्य उठ बैठेगी। चिन्ता और कष्ट ही ने उस की ऐसी दुर्गति बना दी है। जिसे भर पेट कभी रोटी नसीब न हुई, जो कभी नैराश्यमय धैर्य्य और निर्धनता के हृदय विदारक बन्धन से मुक्त न हुई, उसकी दशा इसके सिवा और हो ही क्या सकती है? यह सोचते हुए वे गिरजा के पास गये और उसे आहिस्ता से हिला कर बोले—गिरिजा, आखें खोलो। देखो, ईश्वर ने तुम्हारी विनती सुन ली और हमारे ऊपर दया की। कैसी तबीयत है?

किन्तु जब गिरिजा तनिक भी न मिनकी तब उन्हों ने चादर उठा दी और उस के मुह की ओर देखा। हृदय से एक करुणोत्पादक ठण्डी आह निकली। वे वहीं सर थाम कर बैठ गये। आँखों से शोणित की बूंदें टपक पड़ी। आह! क्या यह सम्पदा इतने महँगे मूल्य पर मिली है? क्या परमात्मा के दरबार से मुझे इस प्यारी जान का मूल्य दिया गया है? ईश्वर तुम खूब न्याय करते हो। मुझे गिरिजा की आवश्यकता है, रुपयो की आवश्यकता नहीं यह सौदा बड़ा महँगा है।

६

अमावस्या की अँधेरी रात्त गिरिजा के अन्धकारमय जीवन की भाँति समाप्त हो चुकी थी। खेतों मे हल चलाने वाले किसान ऊँचे और सुहावने स्वर से गा रहे थे। सर्दी से काँपते हुए बच्चे सूर्य्य देवता से बाहर निकलने की प्रार्थना कर रहे थे। पनघट पर

गाँव की अलबेली स्त्रियाँ जमा हो गई थीं। पानी भरने के लिए नहीं हँसने के लिए। कोई घडे को कुए में डाले हुए अपनी पोपली सास की नक़ल कर थी, कोई खम्भो से लिपटी हुई अपनी सहेली से मुसकुरा मुसकुरा कर प्रेम रहस्य की बातें करती थी। बूढी स्त्रियाँ रोते हुए पोतो को गोद मे लिये अपनी वहुओं को कोस रहीं थीं कि घटे भर हुए अब तक कुएँ से नहीं लौटी। किन्तु राजवैद्य लाला शकरदास अभी तक मीठी नींद ले रहे थे। खाँसते हुए बच्चे और कराहते हुए बूढे उन के औषधालय के द्वार पर जमा हो चले थे। इस भीड भम्भड से कुछ दूर हट कर दो तीन सुन्दर किन्तु मुर्झाये हुए नवयुवक टहल रहे थे और वैद्य जी से एकान्त में कुछ बातें किया चाहते थे। इतने मे पण्डित देवदत्त जी नगे सर नगे बदन, आँखे लाल, डरावनी सूरत, कागज का एक पुलिन्दा लिये दौडते हुए आये और औषधालय के द्वार पर इतने जोर से हाक लगाने लगे कि वैद्यजी चौंक पडे और कहार को पुकार कर बोले कि दरवाजा खोल दे। ये महात्मा वडी रात गये किसी बिरादरी की पचायत से लौटे थे। उन्हें दीर्घ निद्रा का रोग था, जो वैद्य जी के लगातार भापण और फटकार की ओपधियों से भी कम न होता था। आप ऐंठते हुए उठे और किवाड खोल कर हुक्का-चिलम की चिन्ता में आग ढूँढने चले गये। हकीम जी उठने की चिन्ता कर रहे थे कि सहसा देवदत्त उनके सम्मुख जा कर खडे हो गये और नोटो का पुलिन्दा उनके आगे पटक कर बोले वैद्य जी, ये पचहत्तर हजार के नोट हैं। यह आप का पुरस्कार और आप की फीस है। आप चलकर गिरिजा को देख लीजिए, और ऐसा कुछ कीजिए कि वह केवल एक वार आँखें खोल दे। यह उस की एक दृष्टि पर न्योछावर

है—केवल एक दृष्टि पर। आपको रुपये मनुष्य की जान से प्यारे हैं। वे आप के समक्ष हैं। मुझे गिरिजा की एक चितवन इन रुपयों से कई गुना प्यारी है।

वैद्यजी ने लज्जामय सहानुभूति से देवदत्त की ओर देखा और केवल इतना कहा—मुझे अत्यन्त शोक है, मैं सदैव के लिए तुम्हारा अपराधी हूँ। किन्तु तुम ने मुझे शिक्षा दे दी। ईश्वर ने चाहा तो अब ऐसी भूल कदापि न होगी। मुझे शोक है। सचमुच महा शोक है।

ये बातें वैद्य जी के अन्त करण से निकली थीं।



महात्मा कबीरदास

(मिश्रबन्धु)*

महात्मा कबीर दास का जन्मकाल एव मृत्युकाल विविध ग्रथो मे अनेक प्रकार से लिखा हुआ है। "कबीर कसौटी" में ये काल सवत् १४५५ तथा १५७५ माने गए है और "भक्ति-सुधा बिंदु-स्वाद" में सवत् १४५१ तथा १५५२। हम इन का जन्मकाल "कबीर-कसौटी" ही का मानते हैं और मृत्यु-काल "भक्ति-सुधा बिंदु स्वाद"

*ये तीनों भाई-पण्डित गणेश बिहारी मिश्र माननीय पण्डित श्यामबिहारी मिश्र और रायबहादुर पडित शुकदेव बिहारी मिश्र—प्राय एक साथ मिल कर ही साहित्य सेवा किया करते हैं और 'मिश्र बन्धु' नाम से विख्यात हैं। जो भी कोई ग्रन्थ होता है उस में प्रायः तीनों का ही नाम होता है।

इनका जन्मस्थान इटौंजा जिला लखनऊ है। और इनका जन्म क्रमश स० १८६५, स० १८७३ तथा सन १८७८ में हुआ। बड़े भाई पण्डित गणेश बिहारी मिश्र घर का काम काज देखते हैं। मझले माननीय पण्डित श्यामबिहारी मिश्र कोओपरेटिव सोसाइटीज के डिपुटी रजिस्ट्रार हैं और १६००) मासिक वेतन पाते हैं। छोटे रायबहादुर पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र छतरपुर रियासत के दीवान हैं।

इन्होंने कोई बीस पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'मिश्र-बन्धुविनोद' (हिन्दी साहित्य का विस्तृत इतिहास) तथा 'हिन्दी नवरत्न' (हिन्दी के नौ सर्व श्रेष्ठ कवियों का जीवन तथा आलोचना) मुख्य हैं। साहित्य-सेवियों में इनका स्थान बड़ा ऊंचा है।

का। इस हिसाब से कबीर साहब की अवस्था करीब ९७ वर्ष की निकलती है।

आपकी माता और पिता के नाम नीमा और नीरु थे। वे जाति के जुलाहे थे। किसी किसी का यह भी कथन है कि नीमा और नीरु कबीर साहब के पालकमात्र थे, और इनका जन्म एक हिन्दू (ब्राह्मणी) विधवा के उदर से हुआ था, जिसने लोक लाज के भय मे इन्हें लहरतारा तालाब के पास डाल दिया था। नीमा और नीरु ने इन्हें वहां मे उठा कर पाला। हम को समझ पडता है, यह कथा मनगढत है। कबीर साहब वास्तव मे नीमा और नीरु के ही पुत्र थे। इन्होंने अपने को काशी का जुलाहा बार-बार कहा, किन्तु ब्राह्मणी का मातृत्व कहीं नहीं वर्णन किया।

आप लडकपन से ही धार्मिक थे और उपदेश सुनने का चाव रखते थे। आप तिलक इत्यादि लगा कर राम नाम जपा करते थे। कहते है, लोगो ने इन से कहा कि जब तक तुम निगुरे रहोगे, तब तक तिलक जाप आदि से पूरा फल न होगा। इसी विचार से आपने प्रसिद्ध महर्षि स्वामी रामानन्द को अपना गुरु बताया। एक जुलाहे को शिष्य बनाने से स्वामी जी की महानुभावता प्रकट होती है।

कबीर साहब के धार्मिक सिद्धान्तो में बहुत सी बातें ऐसी भी निकलती हैं, जिन से प्रकट होता है कि आप को सूफी-मत का अच्छा ज्ञान था। इसलिए, अथवा अन्य कारणों से मौलवी गुलाम सरवर ने खजीनतुल असफिया मे आपको झूँसी वाले, शेख तकी का शिष्य कहा है। यह महाशय सूफी-मत के पूर्ण ज्ञाता थे। सरवर महाशय का कथन है कि कबीर साहब को हिन्दू लोग, "भगत

कबीर" और मुसलमान "पीर कबीर" कहते थे। कबीर महाशय ने अपनी कविता में शेख तकी का नाम अवश्य लिया है किन्तु उन्हें अपना गुरु नहीं कहा। इधर कबीर साहब ने स्वामी रामानन्द को कई बार साफ-साफ गुरु कहा है। इससे शेख तकी का गुरुपन अग्राह्य है। स्वामी रामानन्द का पाण्डित्य अगाध था, और उनका सूफियों से प्राय वाद हुआ करता था। इसलिए उनके शिष्य कबीर का सूफी सिद्धान्त जानना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। स्वामी रामानन्द महात्मा रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में थे। महात्मा जी वैष्णव थे। उन्होंने द्विज मात्र को अपने शिष्यत्व में लिया, किंतु शूद्रों को रामानुजीय सम्प्रदाय में सम्मिलित होने का अधिकार नहीं दिया। स्वामी रामानन्द ने यह त्रुटि दूर कर के शूद्रों को भी शिष्य बनाया और इस प्रकार रामानुजीय सम्प्रदाय के अन्तर्गत रामानन्दी-शाखा सम्प्रदाय चलाया। आपने रैदास-नामक प्रसिद्ध चमार भक्त को भी अपना शिष्य बना लिया। इतना करने पर भी स्वामी रामानन्द एक जुलाहे मुसलमान को शिष्य बनाने पर तैयार न थे, और इधर कबीरदास को उन्ही का शिष्य होने की लौ लगी थी। इसलिए आपने स्वामी जी का शिष्य बनने की एक अनोखी युक्ति निकाली। स्वामी रामानन्द सूर्योदय के पूर्व मणिकर्णिका-घाट पर नित्य स्नान करने जाया करते थे। एक दिन कबीरदास उनके मार्ग की सीढी पर लेट गए और उनका पैर इनके सिर पर पड़ गया। बेचारे स्वामी जी "राम राम" कह कर अलग हो गए किन्तु कबीर ने तुरन्त उठकर कहा-"आपने मेरे सिर पर पैर रख कर मुझे राम-नाम का मत्र दिया है, अत मैं आप का शिष्य हो गया" स्वामी जी ने कबीर की शिष्यत्व पर ऐसी भक्ति देख कर उन्हें

हृदय से लगाया, और अपना शिष्य भी मान लिया। इस प्रकार कबीर साहब महात्मा रामानद के शिष्य हुए।

कबीर साहब अशिक्षित थे। आप ने जितनी कविता बनाई है वह मौखिक थी। 'बीजक' मे आप लिखते हैं—

"मसि कागज छूवो नहीं कलम गहो नहिं हाथ।
चारिउ जुग का महातम कबिरा मुखहिं जनाई बात।"

हजारो पद बनाने और अविचल भक्त होने पर भी आपने कपडा बुनने का अपना पैतृक व्यवसाय कभी नहीं छोडा। रचना में भी आपने बार बार जुलाहेपन की बातों का उल्लेख किया है। आप का विवाह बनखडी बैरागी की पालिता कन्या लोई के साथ हुआ था, जिससे आपके कमाल और कमाली नामक पुत्र और कन्या उत्पन्न हुई। लोई बडी सुन्दरी थी और उसने कबीर के सद्गुणो पर रीझ कर इन का साथ पसद किया था। कबीर साहब सत सग को बहुत पसन्द करते थे। एक बार इनके यहाँ कुछ सत ऐसे समय मे आए, जब आतिथ्य करने को इनके पास कुछ भी न था। इस पर यह बडे संकट में पडे। तब लोई ने कहा- यदि आप की इच्छा हो तो साहूकार के उस बेटे से धन लाऊ जो मुझ पर मोहित है। कबीर ने सत समादर के विचार से यह भी स्वीकार कर लिया। और लोई ने रात को उनके पास जाने का वचन देकर धन प्राप्त किया, जिससे सतों का आतिथ्य हुआ। रात को जाने के समय बडे जोर मे पानी बरसने लगा। तब भी कबीर साहब वचन रखने के लिए अपने कधे पर चढा कर लोई को साहूकार के पुत्र के यहा लेगए। जब उसने यह जाना, तब कबीर साहब के पैरों पर गिर कर क्षमा मागी। और इनका

शिष्यत्व ग्रहण किया। ऐसी माता और पिता पाकर भी "कमाल" उच्चतम आचरण न प्राप्त कर सका। उसके विषय में स्वयं कबीर दास लिखते हैं—

" बूडा वस कबीर का उपजे पूत कमाल,
हरि का सुमरिन छोडि के घर ले आया माल।"

कबीर साहब जो कपडा बना कर बाजार में बेचने ले जाते थे, उसे कभी कभी बेचने के स्थान पर साधुओं को दे देते और खाली हाथ घर लौट आते थे। ऐसे पुरुष को पुत्र के धन पर आसक्ति बुरी लगनी ही चाहिए।

कबीर साहब ने देश देश घूम कर लौकिक ज्ञान का उपार्जन किया था। आप बलख तक गए थे। आप सत्य के इतने पक्षपाती थे कि जो बात आपको असत्य जचती थी उस की तीव्र शब्दों में आलोचना अवश्य करते थे, चाहे इन के मत से उस से थोडा ही सा अन्तर क्यों न हो। आप स्वय सत और योगी थे, किन्तु गृह त्याग को पसद न करने के कारण ऐसे लोगो की आप सदा निंदा किया करते थे।

इसी भाँति हिन्दू और मुसलमानो के सैकडों धार्मिक आचार विचारों पर आपने शुद्ध भाव से तीव्र कटाक्ष किए हैं। "झूठा रोजा झूठी ईद" जैसे वाक्य आपके मुख पर सदैव रहते थे। इन कारणों से बादशाह सिकन्दर लोदी तक आपकी शिकायत पहुची, और उसने उन्हें जजीरो से बधवा कर गगा जी मे फिंकवा दिया, किन्तु यह किसी प्रकार बच गए। आपने स्वय लिखा है—

" गग लहर मेरी टूटी जँजीर, मृग छाला पर बैठे कबीर।
कह कबीर कोउ सग न साथ, जल थल राखत हैं रघुनाथ।"

इनके माहात्म्य विषयक बहुत से अन्य उपाख्यान भी प्रचलित हैं जिनमे अप्राकृतिक घटनाओ का कथन है। उनका यहा समावेश नहीं किया जाता। धार्मिक विरोध मे ही समझ पडता है कि अन्त में आपको अपने जन्म स्थान तथा आजन्म के निवास-स्थान काशी को छोडना पडा। यद्यपि आपके काशी छोडने का एक कारण यह भी था कि आप वहा मरने के कारण स्वर्ग प्राप्त करना निंद्य समझते थे। कहते हैं, काशी में मरने से मनुष्य स्वर्ग को अवश्य जाता है और मगहर में शरीर छोडने से नरक को। इसी से कबीर साहब यह कह कर काशी से मगहर चले गए कि "जो कबीर काशी मरै, तो रामै कौन निहोर।" भक्ति-सुधा बिंदु-स्वाद का कथन है कि आपने सवत् १५४९ मे मगहर पधार कर तीन वर्ष के अनन्तर शरीर छोडा। कबीर कसौटी ने इस घटना का वर्णन निम्न लिखित है —

"पन्द्रह सौ पचहत्तर किय मगहर को गौन,
माघ सुदी एकादशी, रहो पौन मे पौन।"

इनका शरीरान्त होने पर इनके हिन्दू तथा मुसलमान शिष्यो मे उनके अन्तिम सस्कार के विषय मे झगडा होने लगा। किन्तु जब शव पर से चद्दर उठाई गई, तब शव के स्थान पर फूलो का ढेर मिला। इस पर फूलों के दो भाग करके एक भाग से हिन्दुओं ने काशी में कबीर-चौरा बनाया, और दूसरा भाग मुसलमानों ने गाड कर मगहर में कब्र बनाई, जो अब तक मौजूद हैं। ये दोनो स्थान अब भी आपके पथ वालो के द्वारा पूजे जाते हैं। शव के स्थान पर फूलों वाली कथा महात्मा नानक तथा चित्तौर के बाप्पा रावल के विषय में भी प्रचलित है। महात्मा कबीरदास

सिद्ध योगी थे इनके धार्मिक विचार बहुत ऊँचे थे।

कबीर साहब के बहुत से शिष्य उनके जीवन काल ही में हो गए थे। उनके पीछे कबीर-पथ अब तक चल रहा है। भारत में अब भी आठ-नव लाख मनुष्य कबीर-पथी हैं। इनमें मुसलमान बहुत थोड़े हैं और हिन्दू बहुत अधिक। कबीर साहब का मान रीवा नरेश ने बहुत किया था। रीवा नरेश महाराजा विश्वनाथसिंह ने 'बीजक' की टीका भी रची। कबीरदास के बाद उनके मत की बारह शाखायें होगईं। कबीर पथियो में त्यागी और गृहस्थी दोनों हैं। इनका कोई दूसरा धर्म नहीं है। वरन् हिंदू कबीर पथी हिंदू हैं, और मुसलमान कबीर पथी मुसलमान हैं। कबीर पथ उनका विश्वास मात्र है हिंदू कबीर-पथी अधिकतर नीच जातियों के हैं, और इस पथ के कई गुरु भी ऐसे ही हैं।

कबीरदास ने स्वय ग्रंथ नहीं लिखे, वरन केवल मुख से भाखे। इनके शिष्यों ने उन्हे लिपि-बद्ध किया। ऐसी दशा मे उनमे बहुत कुछ अदल-बदल हो जाना सम्भव है। "वेस्कट" महाशय का विचार है कि इस बात पर विश्वास करने के लिए दलीले हैं कि कबीर की अधिकतर शिक्षाएँ धीरे-धीरे हिन्दू धर्म के साचे में ढल गई हैं। हम को समझ पड़ता है कि कुछ घटाने- बढाने से इन महात्मा के उपदेशो मे अतर डालना कठिन था। आप ने एक ही विचार को सैंकडों प्रकार से कहा है, और सब में एक ही भाव प्रतिध्वनित होता है। आप राम-नाम की महिमा गाते थे, एक ही ईश्वर को मानते थे, कर्मकाड के घोर विरोधी और सखी भाव के अविचल भक्त थे। अवतार, मूर्त्ति, रोजा, ईद, मसजिद, मन्दिर आदि को यह नहीं मानते थे। अहिंसा, मनुष्य मात्र की समता

तथा ससार की असारता को उन्होने वार वार गाया है । यह उपनिषदो के विचार वाले ईश्वर को मानते थे, और साफ कहते थे कि वही शुद्ध ईश्वर है, चाहे उसे राम कहो चाहे अल्ला ।

नमूने के लिए उनके कुछ पद नीचे दिए जाते हैं ।

जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान,
मोल करो तलवार का, पडा रहन दो म्यान ।

केसन कहा बिगारिया जो मूडौ सौ बार,
मन को क्यो नहीं मूडिए, जामें विषय विकार ।

कबिरा सगत साध की ज्यो गधी की बास,
जो कुछ गधी दे नहीं, तो भी वास सुवास ।

माटी कहे कुम्हार को, तू क्या रौंदे मोहिं,
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रौंदूगी तोहि ।

इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहू का नाहि,
घर की नारी को कहे तनकी नारी जाहि ।

जो तोको काटा बुवै ताहि बोव तू फूल,
तोहिं फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ।

आन गई आदर गया नैनन गया सनेह,
ये तीनों तब ही गए, जबहिं कहा कछु देह ।

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं,
सीस उतारै भुइं धरै, ता पैठें घर माहि ।

जा मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द,
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरण परमानन्द ।

और जिसे ब्रिटिश म्यूजियम कहते हैं। ब्रिटिश म्यूजियम का अर्थ है— अँगरेजी अजायब घर। यह अजायबघर भी है और पुस्तकालय भी। शहर के बीच में, इस विशाल भवन के सैकड़ो कमरों में संसार के, प्रत्येक देश के, प्रत्येक समय के, प्रत्येक विषय की चीजें तरतीबवार रक्खी हैं। मिसर देश की ४००० वर्ष की पुरानी वे हड्डियां, और समूची लाशें (ममियां) देख लीजिए, जिन के मसाले का पता अर्वाचीन रसायन शास्त्र को अब तक नहीं लगा। आदमियों ही की नहीं, बिल्ली, चिड़िया, घड़ियाल वगैरह जानवरों की भी हजारों वर्ष की पुरानी लाशें, आलमारियों में रक्खी हैं। उन्हीं मिसरी कमरों की दीवारों और छतों पर मिसरी नरक और स्वर्ग के दंड विधान और मोक्ष के पुराने चित्र लगे हैं। यमराज का दरबार है, कई बार देखा गया है कि स्त्री और बच्चे यहां आकर काँपने लगे। जरा आगे बढ़िए, तो पुराने काबुल बगदाद और फारस की प्राचीन सभ्यता का सारा इतिहास पत्थरों मूर्तियों और चित्रों में पढ़ लीजिए। ग्रीस और रोम के गत २५०० वर्ष के, जीवन का चित्र अद्वितीय है। प्राचीन भारतीय बौद्ध काल की मूर्तियों का दृश्य जैसा यहां है, वैसा किसी भारतीय नगर में भी नहीं। मुसलमानों की चित्रकारी जानने के लिए भी इस अजायब-खाने से बढ़कर कोई जगह नहीं है। इंगलिस्तान के इतिहास और सभ्यता के विषय में तो कहना ही क्या है ? निपट बर्बरता के युग से लेकर आज तक के पत्थर काँसे और लोहे के हथियार, बरतन, हड्डियां लाशें, कपड़े, पुस्तकें इत्यादि ऐसी कोई चीज नहीं जिसके नमूने यहाँ न हों। रसायन, शीशा, सोना, चाँदी, मोती, जवाहर इत्यादि के कमरों में भी संसार भर के अच्छे से-अच्छे और बुरे-से-

एक आदर्श पुस्तकालय

(श्रीयुत बेणीप्रसाद)†

लदन में छोटे-मोटे हजारों पुस्तकालय हैं। प्रत्येक स्कूल और कालेज मे, प्रत्येक सभा-समिति में पुस्तकालय हैं। बहुत से लोगों के घर ही पुस्तकालय हैं।

इगलिस्तान के प्रत्येक गांव में कम मे कम एक पुस्तकालय है। फिर लदन-शहर में ढेर-के-ढेर पुस्तकालय होना स्वाभाविक ही है। इनके इलावा एक बडा भारी सरस्वती-भवन है, जो ससार मे अद्वितीय है,

---

†आप का जन्म आगरा प्रान्त में वैश्य कुल में हुआ है। अवस्था लगभग ३०-३२ वर्ष है। स्कूल और कालेज की पढाई में आप सदा सर्व प्रथम होते रहे हैं। बी ए में प्रयाग विश्व विद्यालय में प्रथम थे, और एम ए में भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे। आज कल आप प्रयाग विश्व विद्यालय में इतिहास के सीनियर प्रोफेसर हैं। "जहांगीर" पर आप ने अंग्रेजी में एक प्रामाणिक ग्रथ लिखा है। पिछले वर्ष विलायत जाकर इतिहास में ही आपने डाक्टर की उपाधि प्राप्त की है।

अंग्रेजी के विद्वान् होते हुए भी हिन्दी से आप को विशेष प्रेम है, जब आप कालेज में विद्यार्थी थे तभी "सत्येन्द्र" नाम से "सरस्वती" में लेख लिखा करते थे। हिन्दी में सूरदास के पदों का आप ने एक उत्तम सग्रह सम्पादित किया है जिस की भूमिका से आप की विद्वत्ता टपकती है। आजकल आप हिन्दी में भारतवर्ष का एक बृहत् प्रमाणिक इतिहास लिखने की तैयारी कर रहे हैं।

और जिसे ब्रिटिश म्यूजियम कहते हैं। ब्रिटिश म्यूजियम का अर्थ है-अगरेज़ी अजायब घर। यह अजायबघर भी है और पुस्तकालय भी। शहर के बीच में, इस विशाल भवन के सैंकड़ों कमरों में ससार के, प्रत्येक देश के, प्रत्येक समय के, प्रत्येक विषय की चीजें तरतीबवार रक्खी हैं। मिसर देश की ४००० वर्ष की पुरानी वे हड्डिया, और समूची लाशें (ममिया) देख लीजिए, जिन के मसाले का पता अर्वाचीन रसायन शास्त्र को अब तक नहीं लगा। आदमियो ही की नहीं, बिल्ली, चिडिया, घडियाल वगैरह जानवरों की भी हजारों वर्ष की पुरानी लाशें, आलमारियों में रक्खी हैं। उन्हीं मिसरी कमरो की दीवारो और छतो पर मिसरी नरक और स्वर्ग के दड विधान और मोक्ष के पुराने चित्र लगे हैं। यमराज का दरबार है, कई बार देखा गया है कि स्त्री और बच्चे यहा आकर काँपने लगे। जरा आगे बढिए, तो पुराने काबुल बगदाद और फारस की प्राचीन सभ्यता का सारा इतिहास पत्थरों मूर्तियो ओर चित्रों मे पढ लीजिए। ग्रीस और रोम के गत २५०० वर्ष के, जीवन का चित्र अद्वितीय है। प्राचीन भारतीय बौद्ध काल की मूर्तियों का दृश्य जैसा यहा है, वैसा किसी भारतीय नगर में भी नहीं। मुसलमानो की चित्रकारी जानने के लिए भी इस अजायबखाने से बढकर कोई जगह नहीं है। इगलिस्तान के इतिहास और सभ्यता के विषय मे तो कहना ही क्या है ? निपट बर्बरता के युग से लेकर आज तक के पत्थर काँसे और लोहे के हथियार, बरतन, हड्डिया लाशें, कपडे, पुस्तके इत्यादि ऐसी कोई चीज नहीं जिसके नमूने यहाँ न हो। रसायन, शोशा, सोना, चाँदी, मोती, जवाहर इत्यादि के कमरो में भी ससार भर के अच्छे से-अच्छे और बुरे-से-

धुरे नमूने मौजूद हैं ।

पर इन सब से बढ कर जो चीज है वह पुस्तकालय है । इस में सत्तर लाख से ज्यादा किताबें हैं । पुस्तकों की सूचियों से ही भारतवर्ष के बडे बड़े पुस्तकालय भर जायँ । उदाहरणार्थ, जिन के नाम एम् (M) अक्षर से आरम्भ होते हैं, उन ग्रन्थकर्त्ताओं के ग्रन्थों के नाम अस्सी बडी बडी, मोटी लम्बी चौडी जिल्दों में हैं। बाइबल एक छोटी सी पुस्तक है । पर उस पर जो ग्रन्थ यहा हैं, उनके नामो मे बीस पोथे भर गए हैं । । इँगलिस्तान पर भी जो जो पुस्तकें हैं, उनके नाम ऐसे ही बीस पोथों में हैं । ससार की सभी भाषाओं के ग्रन्थ यहा भिन्न भिन्न विभागों में मौजूद हैं । हिन्दी के ग्रन्थों की सूची दो मोटी जिल्दों में है । हिन्दी की कई किताबें जो मुझे बनारस, इलाहाबाद, कलकत्ता, जयपुर, जोधपुर, छतरपुर आदि स्थानों में ढूढने पर भी नहीं मिली थीं, यहा अनायास पढने को मिल गई । सस्कृत और पाली की छपी और हस्तलिखित पुस्तकें तो और भी ज्यादा हैं । इसी प्रकार चीनी, जापानी, फारसी, अरबी, फ्रेंच, जर्मन, इटालियन, रशियन इत्यादि सभी भाषाओं के हजारो ग्रन्थ वहा रक्खे हैं ।

इस पुस्तकालय का उद्देश्य साधारण पठन-पाठन नहीं है । इस का एक-मात्र उद्देश्य अनुसधान (Research) में सहायता करना है । कानून के माफिक ब्रिटिश-साम्राज्य की छपी हुई सब पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओ की एक एक कापी यहा आती है। प्रति दिन नए-नए उपन्यास, सैकडो की तादाद में, आते हैं । इस देश में लोगों को नए उपन्यास पढने का शौक नहीं, नशा है । पर ब्रिटिश म्यूजियम में कोई उपन्यास, जब तक वह पाच बरस का

पुराना न हो जाय, पढने को नहीं दिया जाता। यदि यह नियम न हो, तो पुस्तकालय कोरे उपन्यास पाठकों की बाढ में डूब जाय। अनुसधान के आदर्श के अनुसार ही यह नियम है कि २१ वर्ष से कम अवस्था के मनुष्य पुस्तकालय में नहीं दाखिल हो सकते। कारण, इस से कम अवस्था के आदमी अनुसधान नहीं कर सकते। इसी प्रकार यह नियम है कि उन्ही लोगों को दाखिल होने का टिकट दिया जाय, जो विशेष अध्ययन के उपयुक्त हैं। पुस्तकालय से कोई पुस्तक किसी अवस्था में भी बाहर ले जाने की इजाजत नहीं है। प्रात काल के ९ बजे से शाम के ८ बजे तक आप यहा पढ सकते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इगलिस्तान की सब सस्थाओं की तरह यहा भी कोट, टोप, घडी और छाता रखने के कमरे हैं तीसरे पहर के खाने का इन्तिजाम है। इस देश में सब लोगों का सिद्धान्त है कि "भूखे भक्ति न होय गुसाई"। कैसा भी जरूरी काम क्यों न हो, भोजन के समय अँगरेज सब छोड कर भोजन अवश्य करेगा। भूखे रहने से बुद्धि बढती है या भूखा आदमी ठीक-ठीक पढ सकता है-ऐसा यहा किसी का विश्वास नहीं है। जो लोग पढ़ने आते हैं, वे तीसरे पहर चाय अवश्य पीते और रोटी जरूर खाते हैं। बहुत से लोग ऐसे हैं, जो तीस तीस, चालीस चालीस, यहा तक कि सत्तर अस्सी मील तक से सवेरे की गाड़ी से, पुस्तकालय में आते और रात की गाडी से रोज घर लौट जाते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यहा की तेज रेलगाडी एक घटे में साठ मील चलती है। ६९ मील दूर ऑक्सफर्ड से ७० मिनट में आप लदन पहुँच सकते और रेल स्टेशन से उतर कर धरती के भीतर के रेल से पाच मिनट मे पुस्तकालय के दरवाजे पर

आ सकते हैं। सवेरे नव दस बजे के बीच सैकड़ों आदमी पुस्तकालय के दरवाजे पर दाखिल होते हुए दिखाई देते हैं। पढने के लिए कई कमरे हैं। सब से बडे गोल कमरे में बीच के चक्रव्यूह में सूचिया रक्खी हैं, और इधर उधर सैकडों मेजें लगी हैं। प्रत्येक मेज का नम्बर अलग अलग है। प्रत्येक मेज एक हाथ से ज्यादा चौडी और डेढ़ गज से ज्यादा लम्बी है। हर एक मेज पर कलम, दावात, सोख्ता, वरक तराश और पेपर वेट रक्खे हैं, प्रत्येक मेज पर बिजली की रोशनी का प्रबन्ध है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यहा रोशनी के प्रबन्ध के बिना कोई काम नहीं हो सकता। जाडों में कभी-कभी ऐसा कुहरा पड़ता है कि पुस्तकों के अक्षर क्या, सामने की चीज क्या, खुले मैदान में अपना हाथ पसारिए तो वह भी नहीं दिखाई देता। तीन चार महीने तक ९ बजे सूर्योदय होता है, और ३½–४ बजे सूर्यास्त। देश-भर में बिजली और गैस से रात के छ–सात घंटों को दिन बनाना पडता है। पुस्तकालय के कोने कोने में बिजली की रोशनी का प्रबन्ध है। पढने वाले एक एक मेज घेर लेते हैं। वे सूचीपत्र से देख कर टिकटो पर वाछित पुस्तकों के नाम, ग्रथकर्त्ताओं के नाम, नवर इत्यादि तथा अपना नाम, अपनी मेज का नम्बर तथा तिथि आदि लिखकर इधर उधर रक्खी हुई टोकरियो में डाल देते हैं। हर दस पाच मिनट में कर्मचारी पहिए दार गाडियों में किताबें भरकर कमरे मे लाते और चुप चाप मेजों पर डालते हुए चले जाते हैं। पुस्तकालय में बोलने की सख्त मनाही है। जहा बिना बोले किसी तरह काम ही नही चल सकता, वहीं मुह खोलने की इजाजत है। यदि आप की मागी हुई पुस्तक और कोई पढ रहा है, तो कर्मचारी आपके टिकट पर एक और

टिकट लगा देगा, जिस पर छपा हुआ है कि "यह पुस्तक प्रयोग में है। यदि बहुत आवश्यकता हो, तो अध्यक्ष से निवेदन किया जाय।" और दोनों टिकट आप की मेज पर डाल कर चला जायगा। यदि पुस्तक नियमानुसार किसी दूसरे कमरे में मिल सकती है, तो आप के टिकट के साथ चिपका हुआ दूसरा टिकट आप के पास आ जायगा कि अमुक कमरे में इस का अवलोकन कीजिए। यदि आप पुस्तक का नम्बर लिखना भूल गए है, तो टिकट इस छपे हुए नोट के साथ लौट आवेगा कि इस में नम्बर लगाइए। अगर तारीख गलत हो, तो दो मिनट मे टिकट के साथ छपा हुआ नोट आवेगा कि तारीख ठीक कीजिए। जितनी भूलें हो सकती हैं, सब के लिए छपा कर टिकट रख लिए गए हैं, जिस मे मुह से कुछ कहने की जरूरत ही न पडे। अगरेजी शिष्टाचार मे बात बात पर धन्यवाद दिया जाता है और बात-बात पर शोक प्रकट किया जाता है। पर पुस्तकालय में यह शिष्टाचार इशारे मे ही बरता जाता है।

इस प्रकार शान्ति पूर्वक सैकडो विद्वान् रोज यहा पढा करते, और लेख या ग्रथ लिखा करते हैं। गत सौ वर्षों के अनेक ग्रथ जिन्होंने ससार को हिला दिया है, इसी गोल कमरे मे लिखे गए हैं। यथा कार्लमार्क्स ने "कैपिटल' नामक युगान्तरकारी, समष्टिवाद का धर्मशास्त्र यहीं लिखा था। वह प्रात काल ही पुस्तकालय मे प्रवेश करता था। शाम को छ बजे कर्मचारियों को उसे जबरदस्ती निकालना पडता था। आज भी आप देख सकते हैं कि उस मेज पर एक हबशी दाँत पीस-पीस कर उन अत्याचारों का अनुसधान कर रहा है, जो योरप ने उसकी जाति पर किए हैं। थोडी दूर आगे एक आयरिश ५० पुस्तकों का ढेर लगाए अपने देश का

एक नया इतिहास तैयार कर रहा है। उधर अंगरेजी साहित्य पर नया प्रकाश डालने का उद्योग हो रहा है।

पुस्तकों के समुचित विषय विभाग और प्रबंध के लिए प्रत्येक विभाग में धुरंधर विद्वान् नौकर हैं। इस पुस्तकालय का बड़ा पुस्तकाध्यक्ष होना तो अत्यधिक सम्मान की बात है, पर यदि किसी एक विभाग के भी पुस्ताध्यक्ष हो गए, तो उसका अर्थ यह है कि इंगलिस्तान के प्रधान विद्वानों में आप की गणना हो गई। अपने-अपने विषय के ये लोग पूरे पण्डित होते हैं। लेखकों का नाम दर्ज करने में एक बड़ी मनोरञ्जक रीति का अनुसरण करते हैं। बहुत-से बंगाली लेखक अपने नाम मुकर्जी, बैनर्जी, ला इत्यादि लिखते हैं, पर शुद्ध शब्द हैं मुखोपाध्याय, बंद्योपाध्याय, लाहा इत्यादि। म्यूजियम के विद्वानों ने सर्वत्र इन के शुद्ध नाम लिखे हैं। पूर्वोक्त अशुद्ध नामों के सामने केवल शुद्ध शब्द देखने का संकेत कर दिया गया है। एक बार मुझे अपनी पुस्तक देखने की आवश्यकता हुई। मैं अपना नाम 'ब' से लिखता हूं। पर संस्कृत व्याकरण के अनुसार यह अशुद्ध है। "ब' के स्थान पर "व" होना चाहिए। म्यूजियम के सूचीपत्र में मेरे साधारण अर्थात् अशुद्ध नाम के सामने केवल यह संकेत है कि "वेणीप्रसाद देखिए" और इस शुद्ध शब्द के सामने पुस्तक का नाम इत्यादि है। यहां के विद्वान कहते हैं कि आप लोगों को अपने नाम अशुद्ध लिखने का अधिकार है, परन्तु हम अपने पुस्तकालय में कोई अशुद्धि नहीं चाहते।

विद्वानों के इलावा सैकड़ों कर्मचारी-मुंशी, चौकीदार, सिपाही इत्यादि—इस पुस्तकालय में नौकर हैं। गत युद्ध में बहुत से कर्म-

चारी समर क्षेत्र में चले गए थे। उनके नाम दीवारों पर खुदे हैं। मर जाने वालों के नाम बाहर खुदे हैं। ११ नवम्बर को प्रतिवर्ष उन पर फूल चढ़ाए जाते हैं।

यह पुस्तकालय क्या है एक पूरा महकमा है। भारत से जो लोग यहां आते हैं, उनको तो यह आदर्श पुस्तकालय मालूम होता है। पर जर्मनी और अमेरिका देखे हुए लोग इस के प्रबंध में बहुत से दूषण बताते हैं। युद्ध के पहले जर्मनी में कई पुस्तकालय थे जो दिन रात खुले रहते थे। बहुत से पुस्तकालय ऐसे भी थे, जो १४-१५ घंटे खुले रहते थे। म्यूजियम केवल ९ घंटे खुला रहता है। अमेरिका में पढ़ने वालों को बक्स ताला और उसकी कुंजी भी दी जाती है। पर इस म्यूजियम में केवल मेज ही मे सन्तोष करना पड़ता है।



म्युनिसिपैलिटी।

(प० राधाकृष्ण झा)*

देश में स्वायत्त शासन की शिक्षा देने, अपने इलाके के छोटे मोटे कामों का प्रबन्ध आप कर सकने लायक बन जाने के लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल जैसी संस्थायें खोली गई हैं। ये शहरों और जिलों में सड़कों की देख भाल, अस्पतालों का इन्तजाम,

---

*आप का जन्म सन् १८८८ ई० में भागलपुर जिले के 'कहलगाव' नगर में हुआ। सन् १९१२ में आप ने बड़ी योग्यता के साथ कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम ए परीक्षा पास की और इस योग्यता के लिए आप को 'कावडेन' (Cobden) स्वर्ण पदक मिला। एम ए पास करने के कुछ दिन बाद ही आप 'पटना' कालेज में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए, और बीच में दो–एक वर्ष छोड़ कर, मृत्यु के समय तक इसी पद पर रहे।

हिन्दी से झा जी को विशेष प्रेम था। आप ने अल्प जीवन काल में ही हिन्दी की जो सेवा की है वह केवल बिहार ही नहीं, सारे हिन्दी–भारत के लिए गौरव का विषय है। हिन्दी में अर्थशास्त्र, राजनीति विषय की पुस्तकों के अभाव को दूर करने का आप ने विशेष प्रयत्न किया। उक्त विषयों पर आप की लिखी हुई 'भारत शासन पद्धति' और 'भारत की साम्पत्तिक अवस्था' पुस्तकें विशेष महत्व पूर्ण हैं। राष्ट्र विज्ञान' नामक आप की तीसरी पुस्तक छप रही थी कि इतने में ३ दिसम्बर सन् १९२६ में आप की असामयिक मृत्यु हो गई।

स्वास्थ्यरक्षा विषयक विविध प्रबन्ध, प्राथमिक शिक्षा इत्यादि आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं । स्वच्छ जल वायु तथा पवित्र भोज्य पदार्थ न मिलने से कोई समाज नहीं जी सकता । सडकों को साफ सुथरा न रखने से बीमारिया फैलती हैं, उन की मरम्मत नहीं करते रहने से मुसाफिरो को कष्ट होता है तथा व्यापार में रुकावट होती है। बच्चों की प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं होने से बच्चे मूर्ख रह जायगे, जिस से देश का भविष्य अन्धकार-मय हो जायगा । इन आवश्यक कार्यों का प्रबन्ध स्थानीय सस्थाओं और प्रजा के प्रतिनिधियो पर छोड दिया गया है, क्योंकि स्थानीय प्रतिनिधि अपने अभावो का अच्छा अनुभव रखते हैं, इस से स्वायत्त शासन की शिक्षा मिलती है और लोग देश सेवा करने योग्य हो जाते हैं।

प्राचीन भारतवर्ष मे गावों और शहरों मे प्राय इसी प्रकार की सस्थाओं से कार्य लिया जाता था, परन्तु कम्पनी के समय विप्लव के कारण देशी सस्थाओं की बडी दुर्दशा हो रही थी। उस समय शासकों ने उन देश-जात सस्थाओं का सस्कार न कर योरप की सस्थाओं का प्रचार किया। आज कल जितने म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड विद्यमान हैं वे सब विलायत की नकल पर ही बनाये गये हैं। इन का जन्म सरकारी कानूनो से हुआ है।

आज कल की म्युनिसिपैलिटिया और बोर्ड पुरानी पचायतों के स्थान में ही कार्य कर रहे हैं । इनका आरम्भ कम्पनी के समय में हुआ। प्रेसिडेन्सी शहरो की म्युनिसिपैलिटी का आरम्भ सतरहवीं शताब्दी मे हुआ था । राजा द्वितीय जेम्स के समय में विलायत की नकल पर मद्रास मे आल्डर मैनो और बरजेसों (Alder-

men and Burgesses) सहित मेयर की अदालत स्थापित हुई। जेल, स्कूल घर, तथा अन्य इमारतो के वनाने और प्रबन्ध के उद्देश्य मे इस की सृष्टि हुई थी। लोगो ने इन वातो के लिए टैक्स देने का विरोध किया, इस कारण मेयर को मद्रास में चुंगी लगाने की आज्ञा मागनी पडी। क्रमश इसी प्रकार की अदालतें बम्बई और कलकत्ते मे भी स्थापित हुई। अब तक इन का विशेष ध्यान शासन वा विचार विभाग के कामों पर ही रहा करता था। १७९३ ई० से ही सच्ची म्युनिसिपैलिटी का आरम्भ होता है। उसी साल वडे लाट को कम्पनी के नौकरो वा अन्य साधारण व्यक्तियों को 'जस्टिस आफ दी पीस' बनाने का अधिकार मिला। ये जस्टिस न्याय के अतिरिक्त सडकों की मरम्मत, उन को साफ सुथरा रखने तथा पहरा चौकी का भी प्रबन्ध करते थे। इन का खर्च मकानों पर टैक्स लगा कर चलता था। १८४० और १८५३ के बीच इन म्युनिसिपैलिटियों में प्रजा द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों को स्थान मिलने लगा। परन्तु १८५६ ई० में ये सब बातें बदल गई। तब से सरकार द्वारा नियुक्त तीन वेतन-भोगी सभ्य म्युनिसिपल का सारा प्रबन्ध करने लगे। १८६१ ई० से फिर अनेक परिवर्तन होने लगे, जिससे आज कल कलकत्ता, मद्रास और बम्बई की म्युनिसिपैलिटियों का स्वरूप बिलकुल ही बदल गया।

मुफस्सिल की म्युनिसिपैलिटियों का आरम्भ १८४५ ई० के ऐक्ट से होता है। यह ऐक्ट बगाल के मुफस्सिल शहरों में म्युनिसिपैलिटियाँ स्थापित करने के लिए हुआ था, परन्तु इसका उपयोग न होने के कारण १८५० में यह कानून उठा कर नया कानून बनाया गया जिस से सारे भारत में म्युनिसिपैलिटी स्थापित करने

का अधिकार प्राप्त हुआ। इन प्रान्तों को छोड़ कर बाकी सम्पूर्ण भारत ज्यों का त्यों बना रहा। इस नियम से प्रान्तीय सरकार को आवश्यकतानुसार शहरों में म्युनिसिपैलिटी स्थापित करने का अधिकार था। सरकार मजिस्ट्रेट तथा अन्य नागरिकों को म्युनिसिपल कमिश्नर बना सकती थी—उनकी संख्या आवश्यकतानुसार घटती बढ़ती थी। उन पर शहर की सड़कों, नालियों, तालाब वा अन्य जलाशयों को सुरक्षित रखने तथा रात को रौशनी का प्रबन्ध करने का भार रहता था। उन्हें इस विषय के उपनियम बनाने तथा खर्च के लिए घर वा अन्य सम्पत्ति पर टैक्स बैठाने का भी अधिकार था। इसी प्रकार इस संस्था का प्रसार यों ही रहा था, इस पर लाट मेयो के समय में इसे और भी सहायता मिली। उसके अनन्तर प्रादेशिक सरकारों ने म्युनिसिपैलिटियों में प्रजा द्वारा निर्वाचित कमिश्नरों की संख्या बढ़ाने का नियम बनाया। पर तो भी निर्वाचन की प्रथा का प्रसार उचित रूप में नहीं हुआ। इस विषय का सब से अच्छा कानून लाट रिपन के समय में पास हुआ। लाट साहब के मन्तव्य से स्वायत्त-शासन में प्रजा को अधिक अधिकार मिला। तब से आज तक जितने नियम बने हैं सब का उद्देश्य म्युनिसिपैलिटियों का दायित्व बढ़ाना तथा निर्वाचन की प्रथा का प्रसार करना रहा है। पहले केवल बड़े बड़े शहरों में ही प्रजा को कतिपय कमिश्नरों के निर्वाचन का अधिकार था, छोटी छोटी म्युनिसिपैलिटियों के कुल कमिश्नर सरकारी नौमिनेशन से ही नियुक्त होते थे। चेयरमैन (सभापति) का कार्य बहुधा सरकारी अफसरों द्वारा ही सम्पादित होता था। परन्तु १९०८-०९ के नियम से छोटे छोटे शहरों वा कस्बों में भी निर्वा-

चन की प्रथा जारी हो गई है। अब बड़े बड़े शहरों मे भी ग़ैर सरकारी सज्जन ही चेयरमैन बनाये जाते हैं।

म्युनिसिपैलिटी का प्रबन्ध कमिश्नरो की एक सम्मलित समिति द्वारा हुआ करता है। ये म्युनिसिपल-कमिश्नर बम्बई और मद्रास प्रान्तो में म्युनिसिपल-कौन्सिलर के नाम से विख्यात है। म्युनिसिपैलिटी की सम्पत्ति, उस की आय, इसी समिति के हाथ में रहती है। कमिश्नरों में कुछ तो सर्वसाधारण द्वारा निर्वाचित होते हैं और कुछ सरकार द्वारा नियुक्त होते हैं। दोनों प्रकार के कमिश्नरो की सख्या कानून द्वारा निश्चित रहती है। निर्वाचन के नियम, वोट देने वालों की योग्यता, प्रत्येक वार्ड (मुहल्ले) से कितने प्रतिनिधि लिये जा सकते हैं, तथा किसी जाति वा सस्था विशेष को प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिलना चहिए या नहीं—इत्यादि बाते प्रादेशिक सरकार द्वारा निश्चित हुआ करती हैं। म्युनिसिपैलिटी के सभापति, उपसभापति तथा कमिश्नरो की अवधि तीन वर्षों की होती है। सभापति और उपसभापति (वाइस चेयरमैन) कमिश्नरों में से ही निर्वाचित होते हैं। म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों में सेक्रेटरी का पद बड़े महत्त्व का है—यह पद विलायत के टाउन क्लर्क से मिलता जुलता है।

म्युनिसिपलो का कार्य नीचे लिखे विभागों में बाटा जा सकता है —

(१) सडकों की मरम्मत, उन पर रोशनी का प्रबन्ध, म्युनिसिपल वा सरकारी इमारतों की देख भाल करना।

(२) सर्वसाधारण के स्वास्थ्य पर ध्यान।

इस के अन्तर्गत अस्पताल, चेचक, प्लेग आदि का टीका, स्वच्छ

पेय जल का प्रबन्ध, गन्दे पानी के निकास के लिये नालिया, सक्रामक बीमारियों से वचने के लिये उपाय, खाने-पीने की वस्तुओं में हानिकारक चीजें न मिलाई जावें इस का निरीक्षण इत्यादि अनेक वातें हैं।

(३) प्रारम्भिक शिक्षा के लिये पाठशालाओं का खोलना।

उपर्युक्त कार्यों को सुचारू रूप से सम्पादन करने के लिये म्युनिसिपैलिटियों को अनेक अधिकार दिये गये हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने घरों के सामने कूडे करकट का ढेर लगाये हो, अपनी मोरियों वा नालियों को गन्दी बनाये हो तो म्युनिसिपैलिटी को अधिकार है कि उस व्यक्ति को कर्तव्यत्रुटि के लिये ५० रु० तक जुर्माना करे।

म्युनिसिपैलिटी का कार्य विना धन के नहीं चलसकता। इस कारण म्युनिसिपैलिटी को टैक्स वैठाने का भी अधिकार है। जहा म्युनिसिपल द्वारा जल कल, रौशनी, और पैखानो का प्रबन्ध होता है वहा उन्हें उन कार्यों के वदले में सर्व साधारण से रुपये वसूल करने का भी अधिकार होता है। म्युनिसिपल की आमदनी नीचे लिखे विभागों में वाटी जा सकती हैं।

(१) चुगी–पजाब, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश और बम्बई मे चुगी का प्रचार है और उससे आमदनी भी खूब होती है। पर यदि चुगी लगाने तथा वसूल करने में विशेष सावधानी न दिखाई जावे तो अकारण कष्ट और असुविधा की सम्भावना है। चुगी वसूल करने में बहुत खर्च पडता है, तथा मुसाफिरों को कभी कभी बडा कष्ट उठाना पडता है। इस के सुधार करने की बडी आवश्यकता है।

(२) मकानों तथा जमीनों पर टैक्स बैठाना—यह प्रथा

बंगाल, बिहार, बर्मा, आसाम, मद्रास आदि प्रान्तो मे प्रचलित है। मकानों के सालाना किराये पर सैकडे ८॥ से अधिक टैक्स नहीं बैठाया जा सकता है। कहीं कहीं 'व्यक्तिकर' बैठाने का भी नियम होता है।

(३) रोजगार पर टैक्स लगाना—यह प्रथा प्राय सारे भारत वर्ष में बहुत प्रचलित है। इस प्रकार के टैक्स मे मद्रास और युक्त प्रदेश में बहुत धन आता है। कहीं यह टैक्स इनकमटैक्स का रूप धारण करता है और कहीं लाईसेंस टैक्स का।

(४) अन्य फुटकर—जैसे सडकों वा घाटो पर पार उतरने का महसूल, पाखाना का या जलकर का टैक्स। इस के अतिरिक्त अपनी जायदाद—यथा हाट, बाजारों, कसाईखाने आदि से भी म्युनिसिपैलिटी को आमदनी होती है।

नालियों का बनाना, पीने के लिए स्वच्छ, पवित्र जल का प्रबन्ध करना आदि आवश्यक कार्यों में बहुत धन की आवश्यकता होती है जिसे म्युनिसिपैलिटिया नहीं पा सकती हैं। इस कारण उन्हें कर्ज लेना पडता है। यदि महाजनों से कर्ज लें तो सूद ही देते देते म्युनिसिपैलिटी का नाक मे दम आजाय। यह विचार कर प्रादेशिक सरकारों ने आवश्यकतानुसार कर्ज देने का प्रबन्ध किया है। सरकार से कर्ज लेकर म्युनिसिपैलिटी को सूद बहुत कम देना पडता है, साधारणत ४) रु० सैकडा, और २०–३० वर्षों में पूरा कर्ज चुका देना होता है।

व्यायाम

(श्रीयुत रामचन्द्र वर्मा)*

मनुष्य की आरोग्यता के लिए व्यायाम बहुत ही आवश्यक है। इस की उपयोगिता इतनी अधिक और सर्व सम्मत है कि आज तक उसके सम्बन्ध मे कभी किसी प्रकार का मत विवाद या विरोध हुआ ही नहीं। मनुष्य जाति को व्यायाम से होने वाले लाभ हजारों वर्षों से मालूम हैं और सदा उनकी उपयोगिता का समर्थन होता आया है। एक प्रसिद्ध डाक्टर का मत है कि जब मैं शारीरिक श्रम से होने वाले कामों की ओर ध्यान देता हू तब मुझे कहना पडता है कि यदि सर्व साधारण में व्यायाम का यथेष्ट प्रचार हो जाय तो आजकल के बहुत मे फैशनेबल रोगों का आप से आप नाश हो सकता है। रोगों को औषध आदि की सहायता से दूर करने की अपेक्षा शारीरिक सगठन को दृढ कर के दूर कर देना कहीं अधिक उत्तम और निर्दोष है। चिरायता या नीम की पत्तियों को औटा औटा कर उन के विषतुल्य कडुए काढे पीने की अपेक्षा

---

* आप हिन्दी क प्रसिद्ध लेखक हैं, आपने द्विजेन्द्रलालराय के कई नाटकों और कवि सम्राट रवीन्द्र की कई कहानियों का हिन्दी में सुन्दर अनुवाद किया है। आप हिन्दी-शब्द-सागर के सहायक सम्पादक हैं तथा काशी नगरी प्रचारिणी सभा क प्रकाशन मन्त्री भी हैं। इसके अतिरिक्त आप "साहित्य रत्नमाला" नाम से पुस्तकों की एक सिरीज प्रकाशित कर रह हैं। आप ने प्राय तीस से अधिक ग्रन्थ लिखे और अनुवाद किये हैं।

उन पेडों पर चढना अथवा उन्हें कुल्हाड़ी से काटना कहीं उपयोगी है। इगलैंड के प्रसिद्ध राजमत्री ग्लैडस्टन ने भूख बढाने के लिए तरह तरह की औषधों की अपेक्षा कुल्हाडी और .. लेकर सबेरे के समय जगल की ओर निकल जाने को ही अधिक उपयोगी वतलाया था।

मनुष्य के शरीर की उपमा किसी ऐसी नाव से दी जा सकती है, जिस के चलाने के लिए बिजली (या भाफ आदि) और पाल दोनों की आवश्यकता होती हो। जिस समय हवा वन्द रहेगी उस समय तो वह नाव बिजली या भाफ के सहारे से चलती रहेगी, पर जब हवा चलने लगेगी तब उस की गति बढाने मे पाल से भी सहायता मिलेगी। ठीक यही दशा हमारे शरीर की है। साधारण स्थिति में तो अपनी भीतरी शक्ति से काम करता ही रहेगा पर वायुसेवन और व्यायाम आदि पाल की तरह उस की सहायता करेंगे। यही नहीं वल्कि जब कभी हमारे शरीर के भीतरी इजिन के बिगडने की बारी आवेगी तब उसी व्यायाम रूपी पाल की सहायता के कारण उस की गति में अन्तर न आने पावेगा। व्यायाम के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह दण्ड, मुग्दर, बैठक, डबेल या जिम्नास्टिक आदि के रूप में ही हो। सभी प्रकार के कठिन शारीरिक परिश्रम व्यायाम ही है। जिस प्रकार पहाडी पर चढने या दौडने से आप का केवल व्यायाम ही नहीं होगा बल्कि आप कलेजे और श्वास सम्बन्धी सब प्रकार के रोगों से भी मुक्त रहेगे। अफीम के सत की गोलिया खा कर आप कुछ समय के लिए उन्निद्र रोग को भले ही दवा लें पर उसका अन्तिम परिणाम आप के लिए घातक ही होगा। पर दिन के समय मैदानो में दौड धूप कर अथवा चक्कर

लगा कर विना कुछ व्यय किये अथवा जोखिम उठाये आप केवल अपने उन्निद्र रोग से ही मुक्त नहीं हो जायेंगे, वल्कि और भी किसी रोग को अपने शरीर में घर न करने देंगे। रोगों की भयकरता का कारण बहुधा शारीरिक दुर्वलता ही हुआ करती है और उस दुर्वलता को समूल नाश करने का मुख्य और सर्वोत्तम साधन व्यायाम है।

डाक्टर हफलैंड की सम्मति है कि उधर वहुत दिनों से मनुष्य घर के अन्दर वन्द रहने और पका पकाया भोजन करने लग गया है, और दिन पर दिन रोगी और दुर्वल होने का मुख्य कारण यही है। यदि मनुष्य अपनी शारीरिक दशा सुधारना चाहे तो उसे उचित है कि वह उन्हीं प्राकृतिक नियमों का पालन फिर न आरम्भ कर दे, जिन के अनुसार वह वहुत प्राचीन काल तक चलता था। अर्थात् यदि मनुष्य नीरोग रहना और वलिष्ठ होना चाहता हो तो उसे उचित है कि वह यथासाध्य शहर के वाहर मैदान में रहे अथवा कम से कम घूमे फिरे और सदा सादा भोजन करे। डाक्टर वरनर मैक फेडन का मत है कि मनुष्य का शारीरिक अथवा नैतिक सगठन कदापि आधुनिक नष्ट सभ्यता के उस जीवन के लिए उपयुक्त नहीं है जो उसे सदा घरों में वन्द रखता और दिन पर दिन उस को शारीरिक श्रम से वचित करता जाता है। यदि डारविन साहव का सिद्धान्त ठीक मान लिया जाय–जो कि वास्तव में वहुत से अशों में ठीक होने अतिरिक्त ससार में प्राय सर्वमान्य है–तो उक्त दोनो विद्वानों के मतों की भी अधिक पुष्टि हो जाती है। उस के भाई वन्द-वन्दर, गुरिल्ले, चिम्पैंजी आदि सदा एक पेड पर से दूसरे पेड पर कूदा करते हैं और जगल जगल घूमते रहते हैं। इस

दृष्टांत से हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य भी विज्ञान और कला कौशल आदि का पीछा छोड कर उन्हीं का सा हो जाय। कहने का मतलब केवल यही है कि मनुष्य निकम्मा और सुस्त बने रहने के लिए नहीं है, बल्कि चंचल, चपल और फुरतीला बने रहने के लिए है।

जो लोग सभ्यता के इतिहास और विकास के सिद्धान्त से भली भाँति परिचित हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य निरी जंगली अवस्था से कितने रूपों में परिवर्तित हो कर वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है। उस की सभ्यता और एक देशीयता के साथ ही साथ अकर्मण्यता और अस्वस्थता आदि अनेक दोषों की भी समान मात्रा मे ही वृद्धि होती जाती है। यद्यपि मानव समाज का फिर उसी प्राचीन स्थिति तक पहुँच जाना न तो किसी को अभीष्ट ही हो सकता है और न सम्भव ही है, तथापि उस के शारीरिक कल्याण के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि वह उस प्राचीन काल के अपने जीवन का सर्वांश में परित्याग न कर दे। जिस मनुष्य के पूर्वज सदा अपना डेरा डंडा लादे हुए एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमा करते थे, वही मनुष्य आज कल सभ्य हो जाने के कारण सौ पचास कदम चलने मे भी अपना अपमान समझता है। आज कल मकान ऐसे स्थानों पर बनवाये या लिये जाते हैं, जहा दरवाजे तक गाडी लग सके, गाडी पर सवार होने के लिए बाबू साहब को सडक तक चलने की तकलीफ भी न उठानी पडे। इस सुकुमारता का फल भी हाथों हाथ मिल जाता है। बाबू साहब सदा दो चार रोगों का अड्डा बने रहते हैं। अधिक पैदल चलने से साल मे दो चार जूतो का खर्च भले ही बढ जाय,

र डाक्टर की फीस और नुसखो के दाम देने से अवश्य छुटकारा हो जायगा। खूब घूमने फिरने के लाभो की परीक्षा दो ही दिन मे हो सकती है, एक दिन आनन्दपूर्वक घर में ही बैठे रह कर और दूसरे दिन दो चार दस मील का चक्कर लगा कर। पहले दिन आप जो कुछ खायंगे वह छाती पर धरा रह जायगा और रात को अच्छी तरह नींद न आवेगी और दूसरे दिन भोजन मजे मे पच जायगा और रात भर आप खूब खुर्राटे लेंगे।

मनुष्य का शारीरिक सगठन ही कुछ ऐसा अद्भुत है कि उस के जिस अग से काम न लिया जायगा वह धीरे धीरे दुर्बल होने लगेगा और अन्त में बेकाम या नष्ट हो जायगा। हाथो पैरों से काम न लिया जाय तो वे सूख जायगे, बहुत ही मुलायम और पतला भोजन करने से दात झड जायगे और यदि हम दिन रात टोपी और साफे का व्यवहार कर के बालों की आवश्यकता दूर कर देंगे तो हमारे बाल भी व्यर्थ सिर का बोझ बने रहना पसन्द न करेंगे और झडने लगेंगे। यही दशा फेफडो की भी समझिए। यदि हम उन से यथेष्ट अथवा विशेष रूप से काम लेना छोड देंगे तो निश्चय है कि वे भी रोगी हो जायगे। फेफडो आदि से यथेष्ट काम लेने का सब से अच्छा उपाय व्यायाम है। जो मनुष्य सदा किसी न किसी प्रकार का व्यायाम करता रहेगा वह किसी प्रकार का व्यायाम न करने वाले की अपेक्षा कहीं अधिक नीरोग और बलिष्ट रहेगा। यदि समान स्थिति की दो बहनो मे से एक का विवाह किसी देहाती साधारण जमींदार के साथ और दूसरी का शहर के किसी धनी कोठीवाल के साथ कर दिया जाय तो शरीर से काम लेने की उपयोगिता सहज में सिद्ध हो जायगी। देहाती की स्त्री को कुएँ

से पानी भरना पडेगा, चक्की पीसनी पडेगी, गौओं भैंसों की सानी आदि का प्रवन्ध करना पडेगा और इसी प्रकार के और भी अनेक कर्म करने पडे गे। पर कोठीवाल महाशय की स्त्री दिन भर मुलायम विछौनो पर पडी पडी 'सरस्वती' और 'स्त्रीदर्पण' के पन्ने उलटेगी, जी घवराने पर हाथ में मौजा वुनने की दो तीन सलाइया और दो चार तोले ऊन ले लेगी और मिसरानी तथा मजदूरनी पर हुकुम चलावेगी। दस वरस वाद जव कभी किसी अवसर पर वहनों की भेंट होगी तव दोनो का अतर आप ही प्रकट हो जायगा। देहात वाली स्त्री स्वय हृष्ट होने के अतिरिक्त दो चार मोटे ताजे वालकों की माँ होगी और कोठीवाल की स्त्री दुवली, पतली और प्रदर रोग से पीडित। यह एक अनुभव सिद्ध वात है कि पानी भरने और चक्की पीसने वाली स्त्रियों को प्रदर या उसी प्रकार का और कोई राग वहुत ही कम और कदाचित ही होता है, पर युरोप और अमेरिका आदि देशो में जो स्त्रिया खूव पढ लिख कर डाक्टरी, वैरिस्टरी या क्लर्की करने लगती हैं उन्हे तरह तरह के सैकडो रोग आ कर घेर लेते हैं। अत आँखें वद कर के किसी देश की प्रथा का अनुकरण करने मे पहले उस प्रथा के गुण-दोष आदि को भी भली भाति मीमासा कर लेनी चाहिए। ऐसा न हो कि केवल तडक-भडक के भुलावे में ही पड कर हम अपने यहाँ के उत्तम गुणों को छोड वैठें और पीछे हाथ मलने की वारी आवे।

आजकल की सभ्यता शरीर से काम लेने को पाप सा समझती है, उसे सब कामों के लिए कलें चाहिए। तो भी अधिकाश नगर निवासियों को अपने पैरों से वहुत कुछ काम लेना पडता है, पर हाथों से काम लेने की उन्हें वहुत ही थोडी आवश्यकता पडती है।

पर उचित और आवश्यक यह है कि जिस अंग से हमारे व्यापार में कम काम लिया जाता हो उस अग से काम लेने के लिए हम व्यायाम करें या अपने लिए कोई नया व्यापार निकालें। केवल मनोविनोद और स्वास्थ्य के लिए यदि वढई और लोहार का काम सीखें और फ़ुरसत के समय घर पर ही दो चार पीढे पटरियाँ वना सकें तो इस में लज्जा या सकोच की कोई वात नहीं है। जगल में जाकर लकडियाँ काटने में कोई शरम नहीं है, यदि शरम हो भी तो वह अधिक से अधिक उन्हें अपने सिर पर लाद कर अपने घर तक लाने मे हो सकती है। गोलियाँ निगलने और शीशिया पीने की अपेक्षा डड पेलना, वैठकें करना और मुग्दर फेरना कहीं श्रेयस्कर है। अस्पताल वनवाने मे वहुत से रुपये लगाने की अपेक्षा अखाडे और व्यायाम-शालायें वनाने में थोडे रुपये लगाना कहीं उत्तम है। रोग उत्पन्न कर के उन्हें चगा करने का प्रयत्न व्यर्थ है। प्रयत्न ऐसा होना चाहिए, जिस मे रोग का मूल ही नष्ट हो जाय; उसे उत्पन्न होने, वढने और फैलने का अवसर ही न मिले। जड छोड कर पेड काटना कभी लाभ दायक नहीं हो सकता, क्यों जड फिर पनपेगी, पेड फिर उगेगा। यही नहीं वल्कि उसके वीज चारों ओर गिर कर और भी नये पेड उत्पन्न करेंगे। अपने शरीर रूपी भूमि को रोग रूपी वृक्ष के जमने योग्य ही न होने दो, और पहले से जो रोग उत्पन्न हो उन का समूल नाश करो, इसी में तुम्हारी जाति का, तुम्हारे देश का और समस्त ससार तथा मानव जाति का कल्याण है।

अशिक्षित का हृदय

(श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक)*

(१)

बूढ़ा मनोहरसिंह विनीतभाव से बोला-"सरकार, अभी तो मेरे पास रुपये हैं नहीं, होते तो दे देता। ऋण का पाप तो देने ही से कटेगा। फिर, आपके रुपए को कोई जोखिम नहीं। मेरा नीम का पेड़ गिरवी धरा हुआ है। वह पेड़ कुछ न होगा, तो पचीस तीस रुपए का होगा। इतना पुराना पेड़ गाँव भर में दूसरा नहीं।"

---

* जन्मस्थान—अम्बाला छावनी। जन्मकाल सं० १८६१

आप कुल चार भाई हैं, जिन में सब से छोटे आप ही हैं। तीन वर्ष की अवस्था में आप को, आप के पितामह के भाई इन्द्रसेन जी वकील ने गोद ले लिया। तब से उनके साथ ही आप कानपुर में रहने लगे।

आप को फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि का अच्छा ज्ञान है। संगीत, फोटोग्राफी आदि ललित कलाओं से आप को प्रेम है और इन में आप अच्छी योग्यता रखते हैं। ललित साहित्य (उपन्यास, गल्प इत्यादि की ओर आप का बचपन से ही झुकाव है। आप हिन्दी के उत्कृष्ट गल्प लेखकों में से हैं। आप की रचनाएं प्रायः हिन्दी की हरेक मासिक पत्रिका की शोभा बढ़ाती हैं। "चित्रशाला" नाम से आप की गल्पों का एक अच्छा संग्रह प्रकाशित हुआ। "मा" नाम का उपन्यास प्रकाशित होने वाला है। भीष्म (नाटक),"संसार की असभ्य जातियों की स्त्रियां" आदि कई अन्य पुस्तकें भी आप की प्रकाशित हो चुकी हैं।

ठाकुर शिवपालसिंह बोले—"डेढ साल का व्याज मिला कर कुल २५) रु० होते हैं। यह रुपये अदा कर दो, नहीं तो हम तुम्हारा पेड कटवालेंगे।"

मनोहरसिंह कुछ घबरा कर बोले—"अरे सरकार, ऐसा अंधेर न कीजिएगा, पेड न कटाइएगा। रुपया मैं दे ही दूगा, यदि न भी दे सकू तो पेड आपका हो जायगा। पर मेरे ऊपर इतनी दया कीजिएगा कि उसे कटवाइगा नहीं।"

ठाकुर शिवपालसिंह मुसकुरा कर बोले—"मनोहर तुम सठिया गये हो, तभी तो ऐसी ऊल-जलल बातें करते हो। भला जो पेड कटाया न जायगा तो हमारे रुपये कैसे निकलेंगे ?'

मनोहरसिंह बोला—"अन्नदाता आपके रुपए तो जहाँ तक होगा, मैं दे ही दूगा।"

ठाकुर—"अच्छा, अब ठीक ठीक बताओ कि रुपये कब तक दे दोगे ?"

मनोहर कुछ देर सोच कर बोला—"एक सप्ताह मे अवश्य दे दूगा।"

ठाकुर—"अच्छा स्वीकार है। एक सप्ताह में दे देना नहीं तो फिर पेड़ हमारा हो जायगा। हमारी जो इच्छा होगी, वह करेंगे—चाहे कटावेंगे, चाहे रक्खेंगे।"

मनोहर—"और चाहे जो कीजिएगा, उसे कटवाइएगा नहीं, इतनी आपसे प्रार्थना है।"

ठाकुर—"खैर हमारा जो जी चाहेगा करेंगे, तुम्हें फिर कुछ कहने का अधिकार नहीं रहेगा।"

(२)

मनोहरसिंह की आयु ५५ वर्ष के लग भग है। अपनी जवानी उसने फ़ौज मे व्यतीत की थी। इस समय वह ससार में अकेला है। उस के परिवार में कोई नहीं। गाँव में दो-एक दूर के रिश्तेदार रहते हैं, उन्ही के यहाँ अपना भोजन बनवा लेता है। न कहीं आता है न जाता है। दिन-रात अपने टूटे-फूटे मकान में पडा ईश्वर भजन किया करता है।

एक वर्ष पूर्व उसे कुछ खेती कराने की सनक सवार हुई थी। उसने ठाकुर शिवपालसिंह की कुछ भूमि लगान पर लेकर खेती कराई भी थी। पर उसके दुर्भाग्य से उस साल अनावृष्टि के कारण कुछ पैदावार न हुई। ठाकुर शिवपालसिंह का लगान न पहुचा। मनोहरसिंह को जो कुछ पेंशन मिलती थी, वह उसके भोजन वस्त्र भर ही को होती थी। अन्त में जब ठाकुर साहब को लगान न मिला तो उन्होंने उसका एक नीम का वृक्ष, जो उसकी झोपडी के द्वार पर लगा था, गिरवीं रख लिया। यह नीम का वृक्ष बहुत पुराना और उस के पिता के हाथ का लगाया हुआ था।

मनोहरसिंह को एक सप्ताह का अवकाश दिया गया। उसने बहुत कुछ दौड धूप की, दो चार आदमियों से कर्ज माँगा, पर किसी ने उसे रुपये न दिए। लोगों ने सोचा वृद्ध आदमी है न जाने कब ढुलक जाय। ऐसी दशा मे रुपया किससे वसूल होगा। मनोहर चारों ओर से हताश हो कर बैठ रहा और धड़कते हुए हृदय से सप्ताह व्यतीत होने की राह देखने लगा।

दोपहर का समय है। मनोहरसिंह एक चारपाई पर नीम के नीचे लेटा हुआ है। नीम की शीतल वायु के झोको मे उसे बडा

सुख मिल रहा है। वह पडा-पडा सोच रहा है कि परसों तक यदि रुपए न पहुँचेंगे तो ठाकुर साहब इस पेड को कटवा डालेंगे। यह पेड मेरे पिता के हाथ का लगाया हुआ है। मुझे और मेरे परिवार को दतून और छाया देता रहा है। इसको ठाकुर साहब कटवा डालेंगे।

यह विचार मनोहरसिंह को ऐसा दु खदायी प्रतीत हुआ कि वह चारपाई पर उठ कर बैठ गया और वृक्ष की ओर मुह करके बोला—यदि ससार में किसीने मेरा साथ दिया है, तो तूने, यदि ससार में किसी ने नि स्वार्थ भाव से मेरी सेवा की है, तो तूने, अब भी मेरी आँखों के आगे वह दृश्य आजाता है जब मेरे पिता तुझे सींचा करते थे। तू उस समय बिल्कुल बच्चा था। मैं तेरे लिए तालाब मे पानी भर कर लाया करता था। पिता कहा करते थे-"बेटा मनोहर यह मेरे हाथ की निशानी है। इस से जब जब तुझे और तेरे बाल बच्चों को सुख पहुचेगा, तब तब मेरी याद आवेगी।' पिता का देहात हुए चालीस वर्ष व्यतीत हो गए। उनके कहने के अनुसार, तू सदैव उनकी कीर्ति का स्मरण कराता रहा, और जब तक रहेगा, उनकी याद दिलाता रहेगा। मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है जब मैं अपने मित्रों सहित तेरी डालियों पर चढ कर खेला करता था। इस समय ससार मे तूही एक मेरा पुराना मित्र है। तुझे वह दुष्ट काटना चाहता है। हा काटेगा क्यो नहीं, देखू कैसे काटता है।"

उसी समय उधर से एक पन्द्रह सोलह वर्ष का लडका निकला। वृद्ध मनोहर को बडबडाते देख उसने पूछा—"चाचा, किससे बातें करते हो ? यहाँ तो कोई है भी नहीं।"

बुड्ढे ने चौंक कर लडके की ओर देखा और कहा—"क्या कहूँ बेटा तेजा, अपने कर्म से बातें कर रहा हूँ। ठाकुर शिवपाल सिंह के मुफ्त पर कुछ रुपए चाहिए। तुझे तो बेटा मालूम ही है। कि पारसाल खेतों में एक दाना भी नहीं हुआ। होता, तो क्या मैं उनका लगान रख लेता? अब वह कहते हैं, लगान के रुपए दो, नहीं पेड कटवा लेंगे। इस पेड को कटवा लेंगे जो मेरे बाप के हाथ का लगाया हुआ है। यह बात तो देखो। समय का फेर है, जो आज ऐसी ऐसी बाते सुननी पडती हैं। बेटा, मैंने सारी उमर फौज में बिताई है। बडी-बडी लडाइयाँ और मैदान देखें हैं। यह बेचारे हैं किस खेत की मूली? आज शरीर में बल होता, तो इनकी मजाल थी कि मेरे पेड के लिए ऐसा कहते। मुँह नोच लेता। मैंने कभी नाक पर मक्खी नहीं बैठने दी। बडे-बडे साहब बहादुरो से लड पडता था। यह बेचारे हैं क्या? बडे ठाकुर की दुम बने घूमते हैं। मैं सच कहता हूँ, अभी इस गाँव के डाँडे पर भी गोली चलने लगे, तो ठाकुर साहब ठकुराइन के लहँगे में दिखाई पडे। मैंने तो तोप के मुँह पर डट कर बदूकें चलाई हैं। पर बेटा, समय सब कुछ करा लेता है। जिन्हों ने कभी तोप की सूरत भी नहीं देखी, वह वीर और ठाकुर बने घूमते हैं। हमे आँखें दिखाते हैं कि रुपए दो, नहीं पेड कटवा लेंगे। देखें कैसे पेड कटवाते हैं? लाख बुड्ढा हो गया हूँ, पर अब भी चार-छः के लिए बहुत हूँ। जब तलवार लेकर डट जाऊँगा, तो भागते ही दिखाई पडे गे। और बेटा, सौ बात की एक बात तो यह है कि मुझे तो अब मरना ही है, चल-चलाव लग रहा है। मैं बडी बडी लडाइयों से जीता लौट आया। समझूँ गा, यह भी एक लडाई ही है। अब इसी लडाई में

मेरा व्रत है। पर इतना समझ रखना कि मेरे जीते-जी इस पेड की एक डाल भी कोई काटने नहीं पावेगा। उनका रुपया गले-बराबर है। भगवान जानें, मेरे पास होता तो मैं दे देता। नहीं है, तो क्या किया जाय? पर यह भी नहीं हो सकता कि ठाकुर साहब मेरा पेड कटवा लें, और मैं बैठे टुकुर-टुकुर देखा करूँ।'

तेजा बोला—"चाचा, जाने भी दो, इन बातों में क्या रक्खा है? पेड कटवाने को कहते हैं, काट लेने देना। इस पेड़ में तुम्हारा रक्खा ही क्या है? पेड तो नित्य ही कटा करते हैं।"

मनोहरसिंह बिगड कर बोला—"आखिर लडके ही हो न। अरे बेटा यह पेड ऐसा वैसा नहीं है। यह पेड मेरे भाई के बराबर है। मैं इसे अपना सगा भाई समझता हूँ। यह मेरे पिता के हाथ का लगाया हुआ है, किसी और के हाथ का नहीं। जब मैं तुम से भी छोटा था, तब से इस का और मेरा साथ है। मैं बरसों इस पर खेला हूँ, बरसों इसकी मीठी-मीठी निबौलियाँ खाई हैं। इसकी दतून आज तक करता हूँ। गाँव में सैकडों पेड हैं पर मुझ से कसम ले लो जो मैंने उनकी कभी एक पत्ती तक छुई हो। जब मेरे घर में आप ही इतना बडा पेड खडा हुआ है, तब मुझे दूसरे पेड में हाथ लगाने की क्या पडी है। दूसरे मुझे किसी और पेड की दतून अच्छी ही नहीं लगती।"

तेजा बोला—"चाचा, बिना रुपए दिए तो यह पेड बच नहीं सकता।"

मनोहर—"बेटा, ईश्वर जानता है, मेरे पास रुपए होते, तो मैं आज ही दे देता। पर क्या करूँ लाचार हूँ। मेरे घर में ऐसी कोई चीज भी नहीं जो बेचकर दे दू। मुझे आप इस बात का बडा

दुख है। गाँव-भर में घूम आया, किसी ने उधार न दिए। क्या करूँ? बेटा तेजा, सच जानना, जो यह पेड कट गया, तो मुझे बडा दुख होगा। मेरा बुढ़ापा बिगड जायगा। अभी तक मुझे कोई दुख नहीं था। खाता था, ईश्वर-भजन करता था, पर अब घोर दुख हो जायगा।"

यह कहकर वृद्ध मनोहरसिंह ने आँखों में आँसू भर लिए।

तेजा वृद्ध मनोहरसिंह का कष्ट देख-सुन कर बडा दुखी हुआ। तेजासिंह गाँव के एक प्रतिष्ठित किसान का लडका था। उसका पिता डेढ दो सौ बीघे भूमि की खेती कराता था। मनोहरसिंह को तेजासिंह चाचा कहा करता था।

तेजा ने कहा—"चाचा, बापू से यह हाल कहा है?"

मनोहर—"सबसे कह चुका बेटा। तेरा बापू तो अब बडा आदमी हो गया है। वह मेरे जैसे गरीबों की बात क्यों सुनने लगा। एक जमाना था, जब वह दिन दिन-भर मेरे द्वार पर पडा रहता था। घर मे लडाई होती थी, तो मेरे ही यहाँ भाग आता था, और दो दो तीन तीन दिन तक बना रहता था। वही तुम्हारा बाप अब सीधे बात नहीं करता। इसी से कहता हूँ, समय की बात है।"

तेजा ने पूछा—"कितने रुपए देने से पेड बच सकता है?'

मनोहर—"२५) रुपए देने पडे गे।"

तेजा—"२५) रुपए तो बहुत हैं चाचा।"

मनोहर—"पास नहीं हैं, तो बहुत ही हैं। होते, तो थोड़े थे।"

तेजा—"दस-पाँच रुपए की बात होती, तो मैं ही कहीं से ला देता।"

मनोहर—'बेटा, ईश्वर तुझे चिरजीव रक्खे। तू ने एक बात तो कही। गाँववालों ने तो इतना भी नहीं कहा। खैर, देखा जायगा। पर इतना तू याद रखना कि मेरे जीते-जी इस पेड को कोई हाथ नहीं लगाने पावेगा।'

(३)

एक सप्ताह बीत गया। आज आठवाँ दिन है। मनोहरसिंह रुपयों का प्रबन्ध नहीं कर सका। वह समझ गया कि अब पेड का बचना कठिन है। पर साथ ही वह यह भी निश्चित कर चुका था कि उसके जीते जी कोई उसको नहीं काट सकता। उसने अपनी तलवार भी निकाल ली थी, और साफ करके रख ली थी। अब वह हर समय पेड के नीचे ही पडा रहता था। तलवार सिरहाने रक्खी रहती थी।

आठवें दिन दोपहर के समय शिवपालसिंह ने मनोहरसिंह को बुलवाया। मनोहरसिंह तलवार बगल मे दबे अकडता हुआ ठाकुर साहब के सामने पहुँचा।

शिवपालसिंह और उनके पास बैठे हुए लोग बुड्ढे को इस सज धज से देख कर मुसकुराए। शिवपालसिंह ने कहा—"सुनते हो मनोहरसिंह एक सप्ताह बीत गया, अब पेड हमारा हो गया। आज हम उसकी कटाई शुरू कराते है।"

मनोहर—"आप को अधिकार है। मुझे रुपया मिलता, तो दे ही देता, और अब भी यदि मिल जायगा, तो दे दूगा। मेरी नियत मे बेईमानी नहीं है। मैं फौज मे रहा हूँ, बेईमानी का नाम नहीं जानता।"

शिवपाल—'तो अब हम उसे कटवा लें न ?"

मनोहर—"यह मैं कैसे कहूँ, आपका जो जी चाहे, कीजिए।"

यह कह कर मनोहरसिंह उसी प्रकार अकडता हुआ ठाकुर शिवपालसिंह के सामने से चला आया और अपने पेड के नीचे चारपाई पर आकर बैठ गया।

दोपहर ढलने पर चार-पाँच आदमी कुल्हाडियाँ लेकर आते हुए दिखलाई पडे। मनोहरसिंह झट म्यान से तलवार निकाल डट कर खडा हो गया और ललकार कर बोला—"सभलकर आगे बढना। जो किसी ने भी पेड मे कुल्हाडी लगाई तो उस की और अपनी जान एक कर दूगा।"

मजदूर बुड्ढे की ललकार सुन और तलवार देख कर भाग खडे हुए।

जब शिवपालसिंह को यह बात मालूम हुई, तब पहले तो वह बहुत हँसे, परन्तु पीछे कुछ सोच कर उनका चेहरा क्रोध के मारे लाल होगया। वह बोले—"इस बुड्ढे की शामत आई है। हमारा माल है, हम चाहे काटे, चाहे रक्खें, वह कौन होता है ? चलो तो मेरे साथ, देखूँ वह क्या करता है ?"

शिवपालसिंह मजदूरो तथा दो लठ-बद आदमियों को लेकर पहुचे उन्हे आते देख बुड्ढा फिर तलवार निकाल कर खडा हो गया।

शिवपालसिंह उसके सामने पहुँचकर बोले—"क्यो मनोहर यह क्या बात है ?"

मनोहरसिंह बोला—"बात केवल इतनी है कि मेरे रहते इसे कोई हाथ नहीं लगा सकता। यह मैं जानता हू कि अब पेड आपका है, मगर यह होने पर भी मैं इसे कटता हुआ नहीं देख सकता।"

शिवपालसिंह—"पर हम तो इसे कटवाए बिना न मानेंगे।"

मनोहरसिंह को भी क्रोध आगया। वह बोला—"ठाकुर साहब जो आप सच्चे ठाकुर हैं, तो उस पेड को कटवा लें। जो मैं असली ठाकुर हूगा, तो इसे न कटने दूगा।"

ठाकुर शिवपालसिंह अपने आदमियों से बोले—"देखते क्या हो? इस बुड्ढे को पकड लो और पेड काटना शुरू कर दो।"

ठीक उसी समय तेजासिंह दौडता हुआ आया और मनोहरसिंह को कुछ रुपये देकर बोला -"लो चाचा ये रुपए, अब तुम्हारा पेड बच गया।"

मनोहरसिह ने रुपए गिन कर ठाकुर शिवपालसिंह से पूछा—"कहिए ठाकुर साहब, रुपए लेना हो, तो ये हाजिर हैं। और, जो पेड़ कटवाना हो, तो आगे बढिए।"

ठाकुर—"रुपए अब हम नहीं ले सकते। रुपए देने की मियाद बीत गई। अब तो पेड कटेगा।"

मनोहरसिह अकडकर बोला—"ठीक है, अब मालूम हुआ कि आप केवल मुझे दुख पहुचाने के लिए पेड कटवा रहे हैं। अच्छा कटवाइए। मुझे भी देखना है, आप किस तरह पेड कटवाते हैं।"

इतनी ही देर में गाव भर में यह खबर फैल गई कि शिवपालसिंह मनोहरसिह का पेड कटवाते हैं, पर मनोहरसिह तलवार खींचे खडा है, किसी को पेड के पास नहीं जाने देता। यह खबर फैलते ही गाँव भर जमा होगया।

गाव के दो चार प्रतिष्ठित आदमियो ने मनोहरसिंह से पूछा—"क्या बात है मनोहरसिंह?"

मनोहरसिंह सब हाल कह कर बोला—"मैं रुपए देता हू, ठाकुर

नहीं लेते। कहते हैं, कल तक मियाद थी, अब तो पेड कटेगा।"

शिवपालसिंह बोले—"कल तक यह रुपए दे देता, तो पेड पर हमारा कोई अधिकार न होता। अब हमारा उस पर पूरा अधिकार है। हम पेड अवश्य कटवावेंगे।"

एक व्यक्ति बोला—"जब कल तक इस के पास रुपए नहीं थे तो आज कहाँ से आगए ?"

शिवपालसिंह का एक आदमी बोला—"तेजा ने अभी ला कर दिए हैं।"

गाँववालों के साथ तेजा का पिता भी आया था। उसने यह सुन कर तेजा को पकडा, और कहा—"क्यों बे, तूने ही रुपए चुराए थे ? मैंने दोपहर को पूछा तो तीन-तेरह बकने लगा था।"

इसके बाद मनोहरसिंह से कहा—"मनोहर, ये रुपए तेजा मेरे सदूक से चुरा लाया है। ये रुपए मेरे हैं।"

मनोहर रुपए फेंक कर बोला—"तेरे हैं तो ले जा। मैंने तेरे लडके से रुपए नहीं मांगे थे।"

फिर मनोहरसिंह ने तेजा से कहा—"बेटा, तूने यह बुरा काम किया। चोरी की। राम-राम। बुढापे में मेरी नाक कटाने का काम किया था। ये लोग समझेंगे, मैंने ही चुराने के लिए तुम से कहा होगा।"

तेजा बोला—"चाचा, मैं गगा उठा कर कह सकता हूँ कि तुमने मुझसे रुपए मांगे तक नहीं, चुराने के लिए कहना तो बड़ी दूर की बात है।"

शिवपालसिंह ने हँसकर कहा—"क्यों मनोहर, अब रुपए कहाँ हैं ? लाओ, रुपए ही लाओ। मैं रुपए लेने को तैयार हू।

अब या तो अभी रुपए दे दो, या सामने से हट जाओ। झगड़ा करने से कोई लाभ नहीं होगा।"

मनोहरसिंह बोला—"ठाकुर साहब, इन तानों से क्या फायदा? रुपए मेरे पास नहीं हैं, लेकिन पेड़ को मैं कटने न दूगा।

शिवपालसिंह उपस्थित लोगों से बोले—"आप लोग इस बात को देखिए और न्याय कीजिए। मियाद कल तक की थी, मैं आज भी रुपए लेने को तैयार हू। अब मेरा अपराध नहीं। यह बुड्ढा व्यर्थ झगड़ा कर रहा है।"

तेजासिंह यह सुनते ही आगे बढ़ा और अपनी उँगली से सोने की अँगूठी उतार कर शिवपालसिंह से बोला—"ठाकुर साहब यह अँगूठी एक तोले की है, आपके रुपए इससे निकल आवेंगे। आप यह अँगूठी ले जाइए। इस अँगूठी पर बापू का कोई अधिकार नहीं। यह अँगूठी मुझे मेरी नानी ने दी थी।"

सब लोग लड़के की बात सुनकर दंग होगए।

यह देखकर तेजासिंह का पिता आगे बढ़ा और बोला—"ठाकुर साहब, लीजिए ये पच्चीस रुपए और अब इस पेड़ को छोड़ दीजिए। आप अभी कह चुके हैं कि रुपए मिल जाँय तो पेड़ छोड़ देंगे, अतएव अपने वचन का पालन कीजिए।"

ठाकुर साहब के चेहरे का रंग उड़ गया। उन्हें विश्वास हो गया था कि अब मनोहरसिंह को रुपए मिलना असंभव है। इसी से उन्होंने केवल अपनी उदारता दिखाने के लिए रुपए लेना स्वीकार किया था। अब वह कुछ न कह सके। कारण उन्होंने पच्चीस तीस आदमियों के सामने रुपए लेना स्वीकार कर लिया था वह रुपए लेकर चुपचाप चले गए।

ठाकुर साहब के चले जाने के बाद मनोहरसिंह ने तेजा को बुलाकर छाती में लगाया और कहा—"बेटा, इस पेड को तूने ही बचाया, अतएव मैं तुझी को यह पेड देता हूँ। मुझे विश्वास होगया कि मेरे पीछे तू इस पेड की पूरी रक्षा कर सकेगा।"

तेजा से यह कह कर उपस्थित लोगों से कहा—"भाइयों, मैं तुम सब के सामने यह पेड तेजासिंह को देता हू। तेजा को छोडकर इस पर किसी का कोई अधिकार न रहेगा।"

फिर तलवार म्यान मे रखते हुए आप ही—आप कहा—"पर मेरे जीते-जी कोई पेड मे हाथ नहीं लगा सकता था, अपनी और उसकी जान एक कर देता। मैंने फौज में नौकरी की है। बडी-बडी लडाइयाँ जीती हैं। यह बेचारे हैं क्या चीज!"

कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर

(*श्रीयुत लक्ष्मीधर वाजपेयी*)*

हमारे देश में प्राचीन काल से ही बहुत से साधु कवि होते चले आये हैं। गुरु नानक जी, कबीरदास जी, सूरदासजी, तुलसीदास जी, समर्थ रामदास जी, चैतन्यदेव, नाभा जी, तुकाराम जी, नामदेव जी, नरसी मेहता, दयाराम जी इत्यादि इसी प्रकार के साधु कवि थे। आजकल कविता के साथ साथ साधुत्व बहुत ही कम पाया जाता

---

*वाजपेयी जी का जन्म सं० १९०७ में कानपुर जिले के मैथा (मायस्थ) ग्राम में हुआ। स्कूल की शिक्षा आप कुल १४ वर्ष की अवस्था तक ही पा सके। उसके बाद अपने ही परिश्रम और अध्यवसाय से आप ने इतनी उन्नति की है।

प्रसिद्ध साहित्य सेवी स्वर्गीय माधवराव सप्रे जी के सहवास से आपको साहित्य सेवा का अच्छा अवसर मिला। सप्रे जी के साथ ही आप हिन्दी केसरी का सम्पादन करते रहे, उनके बाद सप्रे जी के साथ ही आपने दास बोध आदि मराठी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद किया। बाद में लगभग ६ वर्ष तक "चित्रमय जगत्" और "आर्यमित्र के सम्पादक रहे। अब कई वर्षों से इलाहाबाद में "तरुण भारत ग्रन्थावली" नामक एक सिरीज निकाल रहे हैं।

आप मराठी संस्कृत बंगला और अंग्रेज़ी भी जानते हैं। संस्कृत मराठी अंग्रेजी की कई पुस्तकों का आपने हिन्दी अनुवाद किया है। जिनमें मेघदूत का समश्लोकी समवृत्त अनुवाद खास चीज है। आपके द्वारा लिखित अनुवादित और सम्पादित पुस्तकों की संख्या २५ से ऊपर है।

है, और बिना साधुत्व के कविता भी दो कौडी की होती है। ईश्वर की भक्ति में भीतर-बाहर से सरावोर होकर कवि अपने जो उद्गार निकालता है, उसी का नाम सच्ची कविता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी आजकल इसी श्रेणी के कवियों मे हैं। उनको सरस्वती का, भगवान का, वरदान प्राप्त है, और वे गद्य अथवा पद्य में जो कुछ लिखते हैं, अथवा जो कुछ वार्तालाप करते हैं, वह सब सरस्वती का प्रभाव है, और वह सच्ची कविता है, जिससे इस समय सिर्फ भारतवर्ष को ही नहीं, बल्कि सारे ससार को आनन्द मिल रहा है।

रवीन्द्रनाथ का कुटुम्ब बगाल में अत्यन्त प्राचीन काल से एक बहुत प्रतिष्ठित कुटुम्ब समझा जाता है। इस वश में कई बडे बडे साधु और महात्मा पहले भी हो चुके हैं। स्वय रवीन्द्रनाथ के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी बगाल में एक बहुत बडे महात्मा थे। इनकी शान्ति, दया, क्षमा, धर्मज्ञान और परोपकार इत्यादि सद्-गुणों के कारण ही लोगों ने इनको, आजकल के समय में भी महर्षि की पदवी दी थी। इन्हीं महात्मा के घर में सन् १८६१ में हमारे चरित्र नायक रवीन्द्रनाथ का कलकत्ते मे जन्म हुआ। रवीन्द्रनाथ की माता भी एक प्रतिष्ठित कुल की सुयोग्य महिला थीं। वे अत्यन्त सुशील, धर्मात्मा, पतिव्रता, सती-साध्वी देवीरूप थीं। साधु और साध्वी माता-पिता के सद्गुण रवीन्द्रनाथ में बाल-पन से ही दिखाई देने लगे थे। परन्तु पूज्य माता की गोद में बहुत दिनों तक पालन-पोषण और शिक्षण प्राप्त करने का सौभाग्य रवीन्द्रनाथ को नहीं मिला। उन की माता का देहान्त उन के बच-पन में ही हो गया। पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ जी विशेष कर परोपकार, धर्म प्रचार और ईश्वर चिन्तन में ही मग्न रहा करते थे।

अतएव रवीन्द्रनाथ का बालपन अधिकतर प्रकृति माता की ही गोद में व्यतीत हुआ। इन के पालन पोषण की व्यवस्था कुटुम्ब के स्वामि-भक्ति नौकर चाकरों के द्वारा हुई। मातृप्रेम तो इन को बिलकुल ही प्राप्त नहीं हुआ। अतएव इन के स्वभाव में एकान्त प्रियता के लक्षण पहले ही से दिखाई देने लगे थे। अपने बालपन के विषय में उन्हों ने एक बार अपने एक अंगरेज मित्र से कहा था —

"मैं अपने बालपन की एक खास बात यही बतला सकता हूं कि मेरा स्वभाव बहुत ही एकान्तप्रिय था। मेरे पिता की भेंट मुझ से बहुत कम होती थी। परन्तु घर में सब उन की ऐसी धाक मानते थे कि जैसे वे प्रत्यक्ष ही हम लोगों के सामने खड़े हो। जैसे कोई कैदी किसी कोठरी में सिपाहियों की देख भाल में रख दिया गया हो, इसी प्रकार मैं अपने घर में रहता था। मैं अधिकतर अपने कमरे में ही बैठा रहता, और मेरे आस पास के घर के नौकर नोकरानियाँ ही मेरे साथी संगी थे। हमारे कमरे के बाहर संसार मे क्या हो रहा है,—इसके नाना भाँति के चित्र मैं अपनी कल्पना से ही अपने मन मे लाया करता, और उन्हीं से अपना मनोरंजन किया करता था। बस यही मेरा लड़कपन का खेल कूद था। जहाँ तक मैं याद करता हूँ, प्रकृतिनिरीक्षण का ही मुझे बालपन में विशेष प्रेम था। जब कभी मैं आकाश मे बादलों के ऊपर बादलों को दौड़ता हुआ देखता, तो मैं पागल सा हो जाता। बचपन में भी मुझे कुछ ऐसा विश्वास था कि जैसे हमारे आस पास कोई हमारा अत्यन्त प्राणप्रिय मित्र अवश्य मौजूद है। पर उस का नाम क्या है, उस का रूप कैसा है सो मैं प्रकट रूप से बतला नहीं सकता था। प्रकृति पर तो मेरा बहुत ही प्रेम था, जिस

को मैं शब्दो के द्वारा प्रकट नही कर सकता। उसी को मैं अपनी अत्यन्त प्राणप्रिय सखी समझता, और उस में क्षण क्षण पर मुझे नवीन नवीन सौन्दर्य दिखाई देता।"

रवीन्द्र की बालपन की इस भावना मे ही उन के कवित्व का सारा रहस्य भरा हुआ है। अस्तु।

रवीन्द्रनाथ की बालपन की शिक्षा स्कूल में बहुत ही कम हुई। वे लडकपन में जिस पाठशाला मे पढने को जाते थे उस पाठशाला के अध्यापको का व्यवहार विद्यार्थियों के साथ अच्छा नहीं था। बालकों को प्यार के साथ विद्या पढाने की चाल उस समय बहुत कम थी। ताडना और भय दिखला कर अध्यापक लोग शिष्यों को पढाया करते थे। बालक रवीन्द्र के साथ भी अध्यापको का ऐसा ही वर्त्ताव हुआ। रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि एक अध्यापक तो पाठशाला में उन को बहुत ही निर्दय मिला। वह थोडी सी चूक होने पर भी रवीन्द्र को बिना टोपी के खुले सिर, घटों धूप मे खडा रखता। अन्य विद्यार्थियों के साथ भी रवीन्द्र ने अध्यापको का ऐसा ही क्रूर व्यवहार देखा। इस का परिणाम यह हुआ कि पाठशाला की पढाई मे उन का मन हट गया, और पाठशाला मे न जाना पडे इसके लिए वे अनेक लडकपन के बहाने निकालने लगे। रवीन्द्रनाथ स्वय कहते हैं कि कभी कभी तो वे अपने पैर के बूटो को पानी मे डुबोकर वैसे ही गीले बूट पहने हुए घूमा करते थे कि जिस से उन को बुखार आ जाय, और इसी निमित्त से पाठशाला से पिण्ड छूटे। सच है। रवीन्द्र के समान, कोमल भावनाओं के जगत मे विचरण करने वाले, बालको को स्कूल की पढाई के लिए जबरदस्ती मजबूर करना कभी हितकर नहीं है।

यह बात उन के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के ध्यान में तुरन्त आ गई, और उन्हों ने बात की बात मे रवीन्द्र का स्कूल छुड़वा कर घर में ही निजी शिक्षक के द्वारा उन की पढाई का प्रबन्ध किया। निजी शिक्षक की सहायता से अपने भाइयो के साथ रवीन्द्र बाबू ने अपने विद्याध्ययन मे बहुत शीघ्र उन्नति कर ली। महर्षि देवेन्द्रनाथ का ऐसा विचार था कि जिस विद्या और जिस कला की ओर उन के बालको की स्वाभाविक रुचि हो वही विद्या और वही कला उनको सिखाई जाय। रवीन्द्र बाबू की रुचि बालपन से ही काव्य, सगीत, नाटक, और चित्रकला की ओर विशेष थी। अतएव इन्हीं विषयो की शिक्षा उनको दी गई, और स्वाभाविक रुचि होने के कारण बहुत शीघ्र वे उपर्युक्त कलाओं मे निपुण होगये।

कवि की प्रतिभा तो उन में स्वाभाविक, ईश्वर की दी हुई थी। परन्तु प्रसिद्ध वग कवि चडीदास मैथिल कवि विद्यापति, तथा कबीरदास, चैतन्यदेव इत्यादि साधुकवियों की कविताओं के अध्ययन का प्रभाव उन पर बहुत पडा है। अतएव कविता विषय में रवीन्द्रबाबू इन साधुओ को अपना गुरुस्वरूप मानते हैं।

रवीन्द्र बाबू १७–१८ वर्ष की अवस्था मे प्रथम जनता के सामने कविरूप में प्रकट हुए। उस समय की उनकी रची हुई "प्रभातसगीत' "सध्यासमीर" और "मृत्यु का अमरत्व' इत्यादि कवितायें बहुत पसन्द की गई।

रवीन्द्र बाबू पहले पहल सत्रह वर्ष की अवस्था में विलायत गये, और वहा पर लगभग एक वर्ष रह कर प्रसिद्ध साहित्य सेवी और राजनीतिज्ञ जान मोर्ले के यहाँ अँगरेजी साहित्य का अध्ययन

किया। एक बार विलायत जाकर बैरिस्टर बनने की भी उन्हों ने कुछ चेष्टा की थी, पर उन को तो विश्वविख्यात कवि बनना था। अतएव उस समय उन की उक्त चेष्टा मे सफलता नहीं हुई।

२३ वर्ष की अवस्था में रवीन्द्र बाबू का विवाह हुआ, और वे गृहस्थ धर्म में प्रविष्ट हुए। उस समय गाँव में जाकर अपनी पैतृक जमीन-जागीर का प्रबन्ध करने के लिए पिता ने उन को आज्ञा दी। कलकत्ते के समान सुन्दर नगर से बाहर गाँव में जाकर रहना उन को पसन्द नहीं था। पर पिता की आज्ञा कैसे टाली जाय? युवक रवीन्द्र बाबू चुपके से गाँव पर जा कर रहने लगे, और कुछ ही दिन बाद उन का मन वहाँ रम गया। गाँव मे रहने के कारण उनको सर्वसाधारण लोगों और किसानों के आचरण व्यवहार और उन की परिस्थिति को जानने का बहुत अच्छा अवसर मिला। वहा उन्हों ने अपने प्रत्यक्ष ज्ञान से यह अनुभव किया कि मनुष्य मात्र के हृदय में आनन्द और दु ख तथा वासना और भावना का परस्पर मिश्रण कैसा होता है।

पैंतीस वर्ष की अवस्था तक उन का गार्हस्थ्य जीवन बहुत ही सुख और आनन्द के साथ व्यतीत हुआ। हम ऊपर कह चुके हैं कि उन्होने अठारह वर्ष की अवस्था से अपनी काव्यरचना आरम्भ की थी। उस के बाद पैंतीस वर्ष की अवस्था तक उनकी अनेक मनोहर रचनाए प्रकाशित हुईं। इन रचनाओं मे मनुष्य का स्वर्गीय सात्विक प्रेम दिखलाई देता है। ससार प्रेममय है, सब मनुष्य परस्पर सासारिक प्रेम मे बधे हैं, यही उस समय उन की कविता का विषय था। बगाल की जनता पर उनकी उस कविता और गीतों

का बहुत प्रभाव पड़ा। उस समय उनकी उक्त रचनाओं का एक सग्रह "मालाकार" के नाम से प्रकाशित हुआ।

परन्तु पैंतीस वर्ष की अवस्था के बाद उनके जीवन मे कुछ ऐसी घटनाए घटीं, कि जिन्होने उनके उस नैसर्गिक प्रेममय जीवन में एक विचित्र क्रान्ति, अर्थात् परिवर्त्तन कर दिया—उनका जीवन स्वाभाविक ही भगवद्भक्ति और साधुत्व की ओर अब विशेष रूप से अग्रसर हुआ—अर्थात् ३५ वर्ष की अवस्था में पहले उनकी प्रिय पत्नी का देहान्त हुआ। फिर कुछ महीने बाद उन की लड़की क्षय रोग में स्वर्गवासिनी हुई। फिर कुछ दिनों बाद उन का लड़का हैजे की बीमारी में परलोकवासी हुआ। इस प्रकार, एक के बाद एक, ऐसी शोकजनक घटनाए घटीं, जिन्हों ने उनके जीवन को और भी ऊचा करके उनको बिल्कुल साधु बना दिया। इस विषय में रवीन्द्र बाबू ने स्वय एक बार अपने मित्र ऐंड्रयूज साहब से कहा था—

यह मृत्यु मानो मेरे लिए ईश्वर का एक बड़ा भारी वरदान सा मालूम हुआ। मैंने पूर्णतया समझ लिया कि परमात्मा ने मेरे ऊपर पूर्ण कृपा की। मेरा कुछ भी नष्ट नहीं हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि मिट्टी का एक कण भी—चाहे वह हम को नष्ट होता हुआ सा दिखाई दे, पर वास्तव में वह नष्ट नहीं हो सकता। मैं परमात्मा पर सारा भार डाल कर बिलकुल निश्चिन्त होगया। यही नहीं, बल्कि मुझे विश्वास होगया कि मेरा जीवन अब बिलकुल सार्थक हुआ। मृत्यु क्या चीज है, इसका ज्ञान अब मुझे हुआ। मृत्यु का अर्थ है पूर्णता। वह किसी को नाश नहीं कर सकती। उससे कुछ भी नष्ट नहीं होता।"

बस, उपर्युक्त घटनाओं से रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता का

प्रवाह दूसरी ही ओर को वह चला, जिसकी पूर्ण झलक उनकी "गीताजलि" नामक विश्वविख्यात कविता में दिखलाई देती है। गीताजलि के एक गीत का भावार्थ देखिये—

"भगवन्, फूल की तरह आप ही आप खिला हुआ यह गीत तुम्हारा ही दिया हुआ है। यह फूल देख कर मुझे बहुत आनन्द हो रहा है, और अब इसको अपनाकर मै तुम्हें समर्पित करता हू। सो तुम स्नेह से हँसकर इसको अपने हाथ से ग्रहण करो। प्रभो, कृपा करो। मेरा मान रक्खो।"

सन् १९१२ ई० में रवि बाबू ने विलायत में अपनी बँगला गीताञ्जलि का अँगरेजी में अनुवाद किया। इस गीताञ्जलि के गीत पुष्पा की सुगन्ध यूरप के लोगों को इतनी सुन्दर और मनोहर मालूम हुई कि सन् १९१३ ई० मे, स्वीडन निवासी महात्मा नोबेल का स्थापित किया हुआ, पुरस्कार रवीन्द्रबाबू को ही दिया गया। इस पुरस्कार का निर्णय करने वाली विद्वत्सभा ने सर्वसम्मति से यह निर्णय प्रकट किया कि यह ग्रन्थ ससार का सत्य हित साधन करने वाला और मनुष्य मात्र के चित्त को शान्ति देने वाला है।*

*स्वीडन देश में नोवेल नामक एक महा पुरुष हुआ है। यह रसायन शास्त्री, अन्वेषक और यन्त्र-निर्माणकर्त्ता विद्वान् पुरुष था। इसने एक बड़ी निधि स्थापित करके ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि उस के ब्याज से प्रति वर्ष निम्न-लिखित विषयों पर सर्वोत्तम ग्रन्थ-लिखने वाले को एक, लाख बीस हजार रुपये का पुरस्कार मिला करे। वे विषय इस प्रकार हैं —१ रसायन शास्त्र २ भौतिक विज्ञान शास्त्र ३ वैद्यक और शस्त्र वैद्यक शास्त्र ४ अध्यात्म शास्त्र और ५ जिस उपदेश से ससारभर में शान्ति बढे। सन् १९०१ ई० से यह पुरस्कार प्रारम्भ हुआ।

रवीन्द्रबाबू को अभिनन्दन पत्र देते समय यूरप की विद्वत्सभा ने ये शब्द कहे थे —

"मनोहर कविता ही आप के लिए ईश्वरी वरदान है। इस वरदान का आप पवित्र और मगलकार्य में उपयोग कर रहे हैं। आपने चित्त को आनन्द दिया है, मन को शान्ति दी है, कानों को गान सुनाया है, नेत्रों को सौन्दर्य के रूप दिखलाये हैं, और आत्मा को उसके दिव्य स्वरूप का ज्ञान करा दिया है।"

इन शब्दों से रवीन्द्र बाबू की काव्यप्रतिभा और उनकी गीताजलि का महत्व भली भाति प्रकट हो जाता है। "गीताजलि" पर एक लाख वीस हजार रुपये का जो पुरस्कार उनको मिला, वह उन्होंने अपनी परम प्रिय सस्था, बोलपुर के "शान्ति निकेतन" को दे दिया।

"नोवेल-पुरस्कार" के मिलने पर रवीन्द्र बाबू का नाम सारे ससार में विख्यात हो गया। उन की "गीताञ्जलि' का अनुवाद ससार की प्राय सब सभ्य भाषाओं में प्रकाशित हुआ। अँगरेजी में तो उस के कई उत्तमोत्तम और सुन्दर सस्करण निकाले गये हैं। "गीताञ्जलि" का दिव्य आनन्द प्राप्त करके स्वभाविक ही कवीन्द्र रवीन्द्र के दर्शन की और उनके प्रत्यक्ष उपदेश सुनने की, अभिलाषा पश्चिमी लोगों को हुई। अत एव अनेक देशो के विद्वानों ने अपने अपने देशो मे पधारने के लिए रवीन्द्र बाबू को आमत्रित किया। इधर रवीन्द्र बाबू को भी देशदेशान्तर की यात्रा मे पहले ही से बहुत आनन्द आता है। प्रकृति निरीक्षण और मानवी चरित्र का अध्ययन उनके अत्यन्त प्रिय विषय हैं। इस लिए उन्होंने पिछले वर्षों मे इगलैंड, फ्रास, इटली, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्वीडन,,

स्विटजरलैंड, अमेरिका, इत्यादि सभी पश्चिमी देशों की यात्रा की है। इधर पूर्वीय देशों में चीन, जापान, स्याम और जावा, बाली मलाया, इत्यादि पूर्वीय द्वीपों में भी उन्हो ने अपना दिव्य सन्देश पहुचाया है। सब देशों के विद्वानों ने तथा कई देशों की सरकार ने भी उनका अपूर्व गौरव तथा आदर सत्कार किया है। उनके दिव्य सदेश का मुख्य विषय विश्व प्रेम है। सम्पूर्ण ससार के मनुष्य एक ही परम पिता की सन्तान हैं, सब एक ही सूत्र से बन्धे हैं। सब में परस्पर प्रेम और ऐक्यभाव होने से ही सब का उद्धार होगा। इस के अतिरिक्त रवीन्द्र बाबू का यह भी दृढ विश्वास है कि भारतीय सभ्यता और अध्यात्म विद्या से ही सारे मानव समाज का कल्याण हो सकता है। उनके उपदेश के विषय में एक पश्चिमी लेखक लिखता है —

"रवीद्रनाथ के व्याख्यान सुनकर हम को बहुत कौतूहल हुआ। ऐसा जान पडा कि भारत की प्राचीन अध्यात्मविद्या हमारे देश मे पहुचाने वाले ये हमारे नवीन गुरु हैं। उनका व्याख्यान सुनते समय हम को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे हम किसी ऋषि के आश्रम में बैठ कर उसका उपदेश सुन रहे हों।"

भिन्न भिन्न देशों में रवीन्द्रबाबू ने जो व्याख्यान दिये हैं उनका सग्रह उनके "साधना" नाम ग्रन्थ के रूप मे प्रकाशित हुआ है इस ग्रन्थ में स्वार्थ और परमार्थ सम्बन्धी उनके उच्च विचार भली भाँति प्रकट हुए हैं। रवीन्द्रनाथ ने सैकडो ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें नाटक, उपन्यास, आख्यायिका, निबन्ध प्रबन्ध, इत्यादि सब प्रकार के ग्रन्थ हैं। कविता रत्नो की तो बहुत विपुलता है, जिन मे नाना प्रकार के भावात्मक गान भी हैं। उनकी गीताञ्जलि को जो सन्मान

ारे ससार में प्राप्त हुआ है, वह आधुनिक काल के अन्य किसी भारतीय ग्रन्थ को प्राप्त नहीं हुआ।

रवीन्द्र बाबू केवल कवि, गायक, नाटककार, चित्रकार और व्याख्याता ही नहीं है, बल्कि एक सुयोग्य सम्पादक की हैसियत से भी वे अपनी मातृभाषा की पहले बहुत कुछ सेवा कर चुके हैं। उन्होंने अपनी युवावस्था मे "बालक" नामक एक मासिक पत्र निकाला था। इसके बाद "भारती", "भाडार", "साधना" और "बंग दर्शन" नामक पत्रो का भी आपने समय समय पर बडी योग्यता से सम्पादन किया। "प्रवासी" के "सकलन" नामक स्तम्भ का भी उन्होने कुछ काल सम्पादन किया था। अपने सम्पादन काल में उन्होने अनेक नवीन लेखकों को सुचारु रूप से लेखनकला की ओर प्रवृत्त करके उनको उत्साहित किया।

रवीन्द्र बाबू अपने देश के बालक बालिकाओं को भारत की प्राचीन परिपाटी से शिक्षा देने का भी अपनी युवावस्था मे ही प्रयत्न करते आते हैं। आज से लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व ही उन्होंने कलकत्ता नगर मे एक अपनी निजी पाठशाला स्थापित की थी। इस पाठशाला के सचालन में उन्होंने कितना प्रयत्न और स्वार्थ त्याग किया था, सो उन्हीं के शब्दो में सुनिये। उक्त पाठशाला की बात चलाते हुए उन्होन ऐंड्रथ ज साहब से एक बार कहा था —

"इस पाठशाला को चलाने के लिए मैंने अपनी पुस्तकें बेचीं अपनी पुस्तकों के प्रकाशन का अधिकार बेचा—जो कुछ मेरे पास था, सब बेच डाला। उस समय मैंने कौन कौन से प्रयत्न किये, और कैसी कैसी कठिनाइया झेलीं, क्या बतलाऊ! इस पाठशाला के स्थापित करने मे मेरा यही उद्देश्य था कि विद्यार्थियो मे स्वदेशा-

भिमान की जागृति हो। फिर आगे चल कर उसमें अध्यात्मविद्या की शिक्षा भी बढ़ा दी थी। उस समय की कठिनाइयों और संकटों के कारण मेरी मानसिक दशा में एक विचित्र परिवर्त्तन उपस्थित हुआ था।"

अस्तु। रवीन्द्र बाबू की कलकत्ते की वह पाठशाला तो नहीं चल सकी, पर पाठशाला चलाने की लगन उनके मन में बराबर लगी रही। उनके पूज्य पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने कलकत्ते से कुछ दूर बोलपुर नामक स्थान के घने जंगल में, अपने भगवद् भजन के लिए, लगभग ४० वर्ष पहले एक आश्रम बनाया था। यहाँ उक्त महात्मा को अपूर्व शान्ति का अनुभव होता था, और इसी कारण इस का नाम "शान्ति निकेतन" रखा गया। धीरे धीरे यहाँ कुछ विद्यार्थियों के अध्यापन का भी प्रबन्ध होगया, और महर्षि ने अपने इस शान्ति निकेतन को सर्वसाधारण जनता के हाथ में दे दिया। रवीन्द्र बाबू भी इस संस्था में रहने लगे और लगभग २५ वर्ष पहले, अपने पूज्य पिता की सम्मति से वहाँ पर एक ब्राह्म विद्यालय स्थापित किया जिसका आदर्श प्राचीन काल के "गुरुकुल" की तरह रखा। तब से यह "शान्ति निकेतन" का विद्यालय बराबर उन्नति ही करता चला जाता है। यहां विद्यार्थियों को धार्मिक तथा "ऐच्छिक" *शिक्षा दी जाती है*–*अर्थात जिस विद्यार्थी* की जिस विद्या या कला में स्वाभाविक रुचि देखी जाती है, उसको वही विद्या या कला सिखाई जाती है। प्राचीन काल के ऋषियों मुनियों का जैसा आश्रम है।

अब तो यह "शान्ति निकेतन" "विश्व भारती" के रूप में परिणत होगया है अर्थात् यहाँ पर केवल भारतवर्ष के ही नहीं

बल्कि इगलैंड, अमेरिका, जर्मनी, इटली, इत्यादि देशो के बडे बडे विद्वान, अध्यापन का कार्य कर रहे हैं, और पश्चिमी देशो से कुछ विद्यार्थी भी आने लगे है। सब को भारतीय सभ्यता के अनुसार इस आश्रम में जीवन व्यतीत करना पडता है। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वय विद्यार्थियो को शिक्षा देते हैं और साथ ही साथ अध्यापको को भी अध्यात्म विद्या विश्व प्रेम और भगवद्भक्ति के पाठ पढाते रहते हैं। शिक्षा के विषय में विद्यार्थियों पर किसी प्रकार का बोझ अथवा दवाव नहीं है, किन्तु स्वाभाविक उमग और प्रेम के भाव सब आश्रम निवासियो में दिखाई देते हैं। पूर्णिमा और अमावस्या को साहित्य सम्मेलन और सगीत सम्मेलन करके लडकों का मन प्रफुल्लित रखने का भी प्रवन्ध किया गया है। सब लोग सम्मेलन मे नई नई कविताएँ लिख कर लाते हैं, नई नई कहानिया सुनाते हैं और चित्र भी तैयार करते हैं। बडे बड़े यूरोपीय विद्वान् उन के साथ वीणा, इसराज इत्यादि बजा कर आनन्दित होते हैं। जीवन सब का सादा है। यहाँ मेज कुर्सी बेच की बैठक नहीं है बल्कि सब अपने अपने आसनों पर बैठते हैं। शिक्षा खुले मैदान में वृक्षों के नीचे होती है। मौसम देख कर इमारतो में भी श्रेणिया लगती हैं। भजन, प्रार्थना, परमात्मा का ध्यान, सब आश्रम निवासी करते हैं।

शान्ति निकेतन के इस "विश्व भारती" आद्य महाविद्यालय में अब कई नई नई इमारतें बन गई हैं जिनमे बिजली की रोशनी होने लगी है। एक छापाखाना है, जिस में कवीन्द्र के तथा अन्य विद्वानो के ग्रन्थरत्न प्रकाशित हुआ करते हैं। एक बृहद पुस्तकालय है जिसमें सब देशी और विदेशी मुख्य मुख्य भाषाओं के महत्व

पूर्ण ग्रन्थों का सुन्दर सग्रह किया गया है। यहा एक कला भवन भी है जिसमे नाना प्रकार के शिल्प और कला-कौशल की अद्भुत वस्तुएँ तथा चित्रादि प्रदर्शित किये गये हैं। साराश यह है कि रवीन्द्र बाबू ने इस विद्यालय को सब प्रकार से ससार के लिए आदर्श बना रखा है। शान्ति निकेतन का आदर्श निम्नलिखित वाक्यो से, जो उस के फाटक पर बँगला भाषा में लिखे हैं। भली भाति प्रकट हो जाता है —

"प्राणिमात्र की हिंसा नहीं करनी चाहिए। किसी के धार्मिक विश्वास पर आघात नहीं करना चाहिए। केवल एक परम पिता मह की उपासना करनी चाहिए। ऐसे उपदेश करने चाहिए जो सृजनकर्ता और पालनकर्ता की प्रतिष्ठा, भक्ति और उस के आदेशों के अनुकूल हों—उन उपदेशो के द्वारा सदाचार का प्रचार हो, और ससार में भ्रातृभाव का सचार हो।"

रवीन्द्र बाबू की अवस्था इस समय लगभग ६७–६८ वर्ष की है। वे ज्यों ज्यों वृद्ध होते जाते हैं, उनके शरीर की कान्ति और स्फूर्ति बढती जाती है। उनका हृदय महर्षियो की तरह विश्व प्रेम से परिपूर्ण है, उन के चेहरे से शान्ति टपक रही है। वे सम्पूर्ण ससार में, अपनी पवित्र वाणी द्वारा भारत का शान्ति सन्देश पहुँचा कर मनुष्य मात्र का हृदय भारत की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। उनका हृदय स्वदेश और स्वधर्म के विषय मे आशा और उत्साह से पूर्ण है। वे सचमुच ही एक कर्म योगी मनीषी कवि हैं। भगवान् उनको दीर्घायु करे, और बहुत काल तक उनके द्वारा भारत का और ससार का हित साधन होता रहे।

हिन्दी-साहित्य और मुसलमान कवि

(श्री युत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी)*

मुसलमानो का पहला आक्रमण सन् ६६४ ई० में हुआ। उस समय मुसलमान मुलतान तक ही आकर लौट गये। उनका दूसरा आक्रमण ७११ में हुआ। तब उन्हों ने सिन्धु देश पर अधिकार कर लिया था। परन्तु कुछ समय के बाद राजपूतों ने उनको वहा से हटा दिया। इस के बाद महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ। उस समय भी मुसलमानो का प्रभुत्व यहा स्थापित नहीं हुआ। सन् ११९३ से मुसलमानों का शासन-युग प्रारम्भ हुआ। उत्तर भारत में उनका साम्राज्य स्थापित हो जाने पर भी दक्षिण में हिन्दू साम्राज्य बना रहा। विजय नगर का पतन होने पर कुछ समय के लिए समग्र भारत पर से हिन्दू-साम्राज्य का लोप हो गया। परन्तु सत्रहवीं सदी में मरहठे प्रबल हुए और अन्त में उन्होंने फिर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की। इसी समय अंग्रेजों का प्रभुत्व बढा और कुछ ही समय में हिंदू और मुसलमान दोनों को अंग्रेजों का आधिपत्य स्वीकार करना पडा।

---

*बख्शी जी रायपुर (मध्यप्रदेश) के अन्तर्गत खैरागढ रियासत के निवासी हैं। आप ऊंचे दर्जे के लेखक आलोचक और कवि हैं। द्विवेदी जी के बाद से ही सरस्वती का सम्पादन आप बडी योग्यता से कर रहे हैं। "हिन्दी साहित्य विमर्श" "विश्व साहित्य" और "पच पात्र" आदि स्थायी रचनाओंसे आप ने हिन्दी के आलोचनात्मक साहित्य की कमी को बहुत कुछ पूरा किया है।

यद्यपि भारतवर्ष में मुसलमानों का साम्राज्य सन् ११९३ से प्रारम्भ होता है तथापि कितने ही मुसलमान साधक और फकीर इन आक्रमणकारियों के पहले ही यहा आ चुके थे। आठवीं सदी मे जब मुसलमानो ने भारत का एक भाग विजय कर लिया तब तो हिन्दुओं और मुसलमानो मे घनिष्ठता हो गई। उस समय मुसलमानो का अभ्युदय बढ रहा था। बगदाद विद्या का केन्द्र हो गया था भारतीय विद्वान् खलीफ़ा के दरबार तक जा पहुचे। वहा उन लोगों की बदौलत संस्कृत के कितने ही ग्रन्थरत्नों का अनुवाद अरबी-भाषा मे हुआ। भारतवर्ष में मुसलमानों ने केवल अपनी प्रभुता ही स्थापित नहीं की, किन्तु अपने धर्म का भी प्रचार किया। तभी हिंदू और मुसलमान का विरोध आरम्भ हुआ। इस विरोध को दूर करने का सब से अधिक प्रयत्न किया कबीर ने। कबीर ने देखा कि भारतवर्ष मे हिन्दू और मुसलमान का विरोध बिलकुल अस्वाभाविक है।

कोइ हिन्दू कोइ तुरुक कहावै एक जमी पर रहिये।
वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिये ॥
बेद किताब पढ़ें वे कुतबा वे मौलाना वे पाडे।
बिगत बिगत के नाम धरायो यक माटी के भाडे ॥

कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों का हाथ पकड कर एक ही पथ पर ले जाना चाहते थे। परन्तु दोनों इस का विरोध करते थे। कबीर को उन की इस मूढता—इस धर्मान्धता—पर आश्चर्य होता था। उन्होंने देखा कि इस विरोधाग्नि मे पड कर दोनो नष्ट हो जॉयगे।

स्वदेश की कल्याण-कामना से प्रेरित हो कबीर उस पथ को

खोज निकालना चाहते थे जिस पर हिन्दू और मुसलमान दोनों चल कर अपनी आत्मोन्नति कर सकें। उन का प्रयास व्यर्थ नहीं हुआ। हिंदू और मुसलमान सम्मिलन की ओर अग्रसर हुए। भाषा के क्षेत्र में इनका सम्मिलन बहुत पहले हो चुका था। अमीर खुसरो ने इस एकता की नींव को दृढ़ किया। हिन्दी मे कागज पत्र, शादी-ब्याह, खत-पत्र, आदि शब्द उसी सम्मिलन के सूचक हैं। उसके बाद जायसी ने मुसलमानों को हिंदी साहित्य मे सौन्दर्य का दर्शन कराया।

तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहि।
जामे मारग प्रेम का सबै सराहैं ताहि॥

मलिक मुहम्मद जायसी केवल कवि नहीं थे, साधक भी थे। हिन्दू और मुसलमान दोनो उन की पूजा करते थे। कितने ही लोग उनके शिष्य थे। अतएव यह कहना नहीं होगा कि हिन्दी भाषा में रचनाकर उन्होंने मुसलमानों को हिन्दू जाति मे प्रेम करने की शिक्षा दी। जायसी के धार्मिक विचारों का आभास उन के अखरावट से मिलता है। अपने धर्म में अविचल रह कर भी कोई दूसरे के धर्म को श्रद्धा की दृष्टि से देख सकता है। यही नहीं, किन्तु वह उस में सत्य का यथार्थ और अभिन्न रूप देख सकता है, यह बात जायसी की कृति से प्रकट होती है। हिन्दू भी मुसलमानो की तरह ईश्वर की सन्तान हैं। यही नहीं, उन का भी धर्म ईश्वर प्रदत्त है। अतएव वे हमारी घृणा के पात्र नहीं। जायसी ने जो शिक्षायें दी हैं उन में से ऐसी कोई शिक्षा नहीं है जिसे कोई हिन्दू स्वीकार न कर सके।

जिस आन्दोलन के प्रवर्त्तक कबीर थे उस की पुष्टि जायसी के समान मुसलमान साधकों और फकीरों ने की। भारत में राजकीय सत्ता स्थापित करने के लिए हिंदू और मुसलमान दोनों प्रयत्न करते रहे। परन्तु देश में दोनों का स्थान निर्दिष्ट हो चुका था। भारत से मुसलमानो का उतना ही सम्बन्ध हो गया जितना हिन्दुओं का। प्रतिद्वन्द्वी होने पर भी इन दोनो के धर्मों का प्रवेश भारतीय सभ्यता में हो गया। हिन्दी और फारसी मे उर्दू की सृष्टि हुई। उसी प्रकार हिन्दू और मुसलमान की कला ने मध्य युग में एक नवीन भारतीय कला की सृष्टि की। देश में शान्ति भी स्थापित हुई। कृषकों का कार्य निर्विघ्न हो गया। व्यवसाय और वाणिज्य की वृद्धि होने लगी। देश मे नवीन भाव का यथेष्ट प्रचार हो गया। अकबर के राजत्व-काल में इस का पूरा प्रभाव प्रकट हुआ। उसके शासनकाल में जिस साहित्य और कला की सृष्टि हुई उस में हिन्दू और मुसलमान का व्यवधान नहीं था। अकबर के महामन्त्री अबुलफजल ने एक हिंदू मन्दिर के लिए जो लेख उत्कीर्ण कराया था उस का भावार्थ यह है-हे ईश्वर, सभी देव मंदिरों मे मनुष्य तुम्ही को खोजते हैं, सभी भाषाओं मे मनुष्य तुम्हीं को पुकारते हैं। विश्व-ब्रह्मवाद तुम्हीं हो और मुसलमान धर्म भी तुम्हीं हो। सभी धर्म एक ही बात कहते हैं कि तुम एक हो, तुम अद्वितीय हो। मुसलमान मसजिदों में तुम्हारी प्रार्थना करते हैं और ईसाई गिर्जाघरों में तुम्हारे लिए घण्टा बजाते हैं। एक दिन मैं मस्जिद जाता हू और एक दिन गिर्जा। पर मन्दिर मन्दिर में मैं तुम्हीं को खोजता हू। तुम्हारे शिष्यों के लिए सत्य न तो प्राचीन है और न नवीन। अबुलफजल का यह उद्गार मध्ययुग का नव सन्देश था।

हिन्दी में सूरदास और तुलसीदास ने अपने युग को इसी भावना से प्रेरित हो मनुष्य-जीवन में श्रेष्ठ आदर्श दिखलाया। इसी भाव को ग्रहण कर मुसलमानो मे रहीम ने कविता लिखी। निम्नलिखित पद्यो से प्रकट हो जाता है कि रहीम ने हिन्दू भाव को कितना अपना लिया था।

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुप पुरातन की वधू क्यों न चचला होय॥

गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछु उपाव॥

जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल।
तौ काहे कर पर धर्यो, गोवर्धन गोपाल॥

मुगलों के शासन काल मे हिन्दी साहित्य की जो भी वृद्धि हुई उस का कारण यही है कि उस समय मुसलमान भारत को स्वदेश समझने लगे थे। न तो हिन्दुओं ने तत्कालीन राज भाषा की उपेक्षा की और न मुसलमानो ने हिन्दू-साहित्य की। उस समय वैष्णव-सम्प्रदाय के आचार्यों ने धार्मिक विरोध को भी हटाने की चेष्टा की। कितने ही मुसलमान साधक श्री कृष्ण के उपासक हो गये। इन मे रसखान की भक्ति ने हिन्दी में रस की धारा बहा दी है। उन का निम्नलिखित पद्य बड़ा प्रसिद्ध है।

मानुस हौं तो वही रसखान बसौं मिलि गोकुल गाँव गुवारन।
जो पसु हौउँ कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जु कियो ब्रज छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग होउँ बसेरो करौं वही कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

मुसलमानों के लिए यह प्रेम कम साहस का काम नहीं था। ताज का यह कथन सर्वथा उचित था—

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी मैं नमाज हू भुलानी तजे
कलमा कुरान सारे गुनन गहूंगी मैं।
श्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्लेदार
तेरे नेह दाग मे निदाघ ह्वै दहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत मैं
ताण नाल प्यारे हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं॥

इसी प्रेम से प्रेरित हो कितने ही मुसलमान कवियों ने हिन्दी साहित्य को अपनी रचनाओं से अलकृत किया है।

राजनीति के क्षेत्र मे हिन्दू और मुसलमान जाति का विरोध नहीं दूर हुआ। समाज के क्षेत्र मे भी दोनो का संघर्षण बना रहा। तो भी साहित्य के क्षेत्र में दोनों ने सत्य को ग्रहण करने में सङ्कोच नहीं किया।

रुपया

(श्रीयुत पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र")*

मैं लड़कों के लड़कपन का खिलौना हूँ, मिठाई हू । मैं जवानों की जवानी की जान हू, मस्ती हू । मैं बूढ़ों की बुढ़ौती की लकड़ी हू, सहारा हू । मैं रुपया हू ।

मनुष्य मेरा गुलाम है । मैं उसे हजार नाच नचा सकता हू, नचा चुका हू, नचा रहा हू । दुनिया मुझ से दबती है । मैं उसे पलट सकता हू, उलट चुका हू, उलट रहा हू । प्रकृति मेरी वशवर्त्तिनी है । मैं उसे बनाता हू, बिगाड़ता हू, तोड़ता हू, मोड़ता हू । मैं रुपया हू ।

विशाल विश्व में यदि कोई ईश्वर हो, तो मैं हू धर्म हो, तो मै हू, प्रेम हो, तो मै हू । मैं सत्य हू, मैं शिव हू, मैं सुन्दर हू । मैं सत् हू,

*जन्मस्थान-मिर्जापुर जिले में चुनार नामक कस्बा । आयु लगभग २८ वर्ष

आप प्रतिभाशाली गद्य लेखक हैं, उपन्यासकार हैं, और हैं नाटककार भी । आप की भाषा हृदयग्राही और भाव जिन्दा होते हैं । अभी तक आप की रचनायें प्राय पत्र-पत्रिकाओं में छपती थी, पुस्तकाकार केवल दो एक ही प्रकाशित हुई थीं । पर पिछले कुछ दिनों म आपकी नई-पुरानी बहुत सी रचनायें पुस्तकाकार प्रकाशित हुई हैं जिन से हिन्दी ससार में हल चल सी मच गई है । 'दिल्ली का दलाल, 'चन्द हसीनों के खतूत' 'चिनगारियां' 'चाक लेट' 'इन्द्रधनुष' 'दोजख की आग' 'चार बेचारे बलात्कार' 'बुधुआकीबेटी' आदि उपन्यास और गल्प सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । आज कल आप मतवाला सम्पादकीय विभाग में काम करते हैं ।

में चित हू, मैं आनन्द हू। परलोक मैं हू, लोक मैं हूं, हर्ष मैं हू, शोक मैं हूं, क्षमता मैं हूं, ममता मैं हू। मैं रुपया हूं।

मेरी झनझनाहट में जो अलौकिक मधुरिमा है वह वीणापाणि की वीणा में कहाँ? लक्ष्मीपति के पाञ्चजन्य में कहाँ? कोकिल कल-काकली में कहाँ? कामिनी के कोमल कण्ठ में कहाँ? डमरू वाले के डमरू में कहाँ? मृदग मुरचग में कहाँ? सितार जलतरग में कहाँ? यहाँ कहाँ? वहाँ कहाँ? मैं सप्त स्वरो से ऊपर अष्टम स्वर हूं, परम मधुर हू। मैं रुपया हू।

गीता के गायको, चण्डी सप्तशती के पाठको, भगवत के भक्तो सत्यनारायण कथा के प्रेमियों, रामायण के अनुरागियो, महाभारत के मानने वालो—मेरा गीत गाओ, मेरा पाठ पढो, मेरे भक्त बनो, मेरी कथा सुनो, मुझ से अनुराग करो, मुझे मानो, मेरी शरण आओ। तारन तरन मैं हू, भव भय-हरण मैं हू, अशरण शरण मैं हू, जन दु ख हरण मैं हू, धवल-वरण मैं हू, मङ्गल करण मैं हू, पुण्य चरण मैं हू। मैं रुपया हू।

मुझ को आँख दिखाकर, मुझे ठुकरा कर, मुझ से विद्रोह कर कोई बच सकता है?—कोई नहीं।

जमींदार मैं हू, राजा मै हू, बादशाह मैं हू, बादशाहो का बादशाह मैं हू, मैं ईश्वर हू। मैं रुपया हू।

लङ्का—सीता की रुष्टि तुष्टि से नहीं, मेरी रुष्टि तुष्टि से जली थी, मैं विभीषण पर प्रसन्न था। कौरव—द्रौपदी के कोप से नहीं, मेरे कोप से नष्ट हुए थे, मैं पाडवों पर प्रसन्न था। जर्मनी-ब्रिटेन या अमेरिका की धूर्तता से नहीं मेरी धूर्तता से पराजित हुआ, मैं ब्रिटेन पर प्रसन्न हू।

ठाकुर जी बोलते नहीं, मैं बोलता हू—उन से बडा हू। ठाकुर जी चलते नहीं, मैं चलता हू—उन से मेरी अधिक सात्त है। देवताओं में वह आकर्षण नहीं, जो मुझ में है। ईश्वर में वह तेज नहीं वह शक्ति नहीं, जो मुझ में है। यह युग तर्क का है, उदाहरण का है, प्रत्यक्षवाद का है स्वय प्रभुता का है। मैं प्रत्यक्ष हू, सद्य फल का दाता हू, स्वय प्रभु हू, आकर्षक हू—ईश्वर हू, ईश्वर से बडा हू। मैं रुपया हू।

मुझ से वरदान लेकर पाप करो, तुम देवताओं से पूजे जाओगे। मुझ से वरदान लेकर एक—दो नहीं, सात खून करो—साफ बच जाओगे। साम्राज्य को साम्राज्य से भिडा दो। मनुष्यता की बढी हुई खेती को बेरहमी से कटवा डालो—जलवा डालो। स्त्रियो की मर्यादा को–पैसे में दो सेर के हिसाब से–दिन में दस बार खरीदो और बेच डालो। ससार को विधवाओं, बच्चों, बूढों और अपाहिजों की "हाय" से भर दो। भूकम्प उठा दो, प्रलय कर दो—जो चाहे सो कर दो, मगर मुझ से वरदान ले कर। मैं सर्व शक्तिमान् हू। मैं रुपया हू—

" सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज !"

का तीसरा नम्बर है। यहाँ एक "फील्ड म्यूजियम" अर्थात् अजायब घर है। यह मिशिगन झील के किनारे शिकागो विश्व-विद्यालय से थोड़ी ही दूर पर है। रविवार को सवेरे नौ बजे से शाम के पाच बजे तक, सब को यहा मुफ्त सैर करने की आज्ञा है। इस लिए इस दिन यहा बड़ी भीड़ रहती है। आठ नौ बरस के बालक, बालिकायें ऐसे ही स्थानों से अपनी विद्या का आरम्भ करते है। क्योकि यहाँ पर ससार की उन सब अद्भुत वस्तुओं का सग्रह है, जो शिकागो के प्रसिद्ध साँसारिक मेले (World's Fair) में इकट्ठी की गई थी। यहाँ यह बात यथाक्रम दिखलाई गई है कि पृथ्वी के ऊपर प्राणियों का जीवन, प्राकृतिक नियमों के अनुसार, किस प्रकार वर्त्तमान अवस्था को पहुँचा है। भूगर्भविद्या सम्बन्धी पदार्थों को भिन्न भिन्न कमरों में दरजे बदरजे रख कर उनका क्रम विकास अच्छी तरह बतलाया गया है। यहाँ पर स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उत्तरी अमरीका के हिरन किस प्रकार भिन्न भिन्न चारों ऋतुओं में अपना रङ्ग बदलते है। किस प्रकार प्रकृति-माता बर्फ के दिनो में उनको भोजन देती है। उत्तरीय ध्रुव में रहने वाले रीछों के बर्फ के भीतर बने हुए घर क्या ही अच्छी तरह दिखाए गए हैं। यहा यह बात प्रत्यक्ष मालूम हो जाती है कि अमरीका के प्राचीन निवासी (Red Indians) किन देवी देवताओं की पूजा करते थे, कैसे घरो मे रहा करते थे, किस प्रकार किन चीजों की मदद से पहनने के वस्त्र बनाते थे। उनकी नौकायें उनके खाने पीने का सामान, उनके देवालय, उनके युद्ध के शस्त्र, सब चीजें बहुत ही अच्छी तरह दिखाई गई हैं।

इस अजायब घर के मध्य में महात्मा कोलम्बस की

दीर्घकाय मूर्ति विराजमान है। इस जिनोआ-निवासी को देख कर दर्शक के मन मे भाति भाति के विचार उत्पन्न होने लगते हैं और एक अद्भुत दृश्य आँखों के सामने घूम जाता है। पुरानी अमरीका और आज की अमरिका मे कितना अन्तर है? वे यहाँ के प्राचीन निवासी कहाँ गये? पिछली तीन शताब्दियों मे यहाँ की भूमि ने कैसा रूप बदला है? कहाँ योरोप? कहाँ अमरिका? हजारों कोस का अन्तर। भारतवर्ष की तलाश मे एक पुरुष भूल मे इधर का आ निकलता है। उस का आना ही इन सब परिवर्तनों का मूल कारण है।

इस अजायबघर में बनस्पति विद्या, रसायनविद्या जन्तु विद्या, नर-शरीर-विद्या आदि भिन्न भिन्न विद्याओं के सम्बन्ध की सामग्री भी विद्यमान है। "एक पन्थ दो काज"—छुट्टी का दिन है, सैर भी कीजिए और कुछ सीखिए भी। उन्नति के कैसे अच्छे मौके यहाँ के निवासियों को दिये जाते हैं। बालकपन से ही खेल के बहाने यहां वाले इतनी वाकफियत हासिल कर लेते हैं जो हमारे देश मे दस बरस स्कूल में पढने मे भी नहीं होती।

अजायबघर से बाहर निकल कर देखिए। झील के किनारे किनारे, सडक बनी हुई है। बेंचें रखी हुई हैं। वहाँ स्त्री, पुरुष बालक आनन्द मे बैठे हैं और हम खेल रहे हैं। नवयुवक अपनी प्रेयतमाओं के साथ इधर से उधर, उधर से इधर, घूमते और वार्तालाप करते हुए क्या ही भले मालूम होते हैं। मिशिगन झील भी उन के इन प्रेम के भावों को देख कर प्रसन्न मालूम होती है। वह अपने स्वच्छ शीतल पवन के झोंकों से उन्हे आशीर्वाद सा दे रही है। जल की तरगें छोटे छोटे बालकों को देख कर, उन मे

मिलने के लिए, बड़े आह्लाद से आगे बढ़ती हैं, परन्तु तत्काल ही यह सोच कर कि शायद कुछ बेअदबी न हुई हो पीछे हट जाती हैं। इस समय भगवान् सूर्य्य अपने दिन के कार्य्य को पूर्ण कर पश्चिम की ओर गमन करते हैं।

इस अजायबघर के सिवा और भी बहुत से स्थान शिकागो निवासियों को रविवार मनाने के लिए हैं। कितने ही 'उद्यान (Parks) ऐसे हैं जहां "पियानो" बाजे तथा मन बहलाने के और अनेक सामान रखे रहते हैं। वहाँ आकर लोग बैठते हैं, सगीत सुनते हैं, और आनन्द मग्न हो कर घर जाते हैं।

यहा एक उद्यान है, जिस का नाम हम्बोल्ड पार्क है। इस में नहर के ढग के जल के बडे बडे और लम्बे कुण्ड है। उन में जल भरा रहता है। छोटी छोटी नावें पानी पर तैरा करती हैं। ये नावें खेल के लिए हैं। ग्रीष्म काल मे यहा नावो की दौड़ होती है। रविवार के दिन इन उद्यानों का दृश्य बहुत ही मनोहर हो जाता है। नवयुवक नौकाये खेते हुए हसते, खेलते, गाते, जीवन का आनन्द लेते है। एक एक नौका पर प्राय एक नवयुवक और एक युवती स्त्री होती है। वे सहाध्यायी मित्र, अथवा पति पत्नी होते हैं। इस तरह की संगति इस देश मे बुरी नहीं मानी जाती और न हम लोगो के देश की तरह ऐसे बुरे भाव ही इन लोगो में उत्पन्न होते हैं। स्त्रियो की बडी प्रतिष्ठा है। कोई बहुत ही पतित पुरुष होगा जो उन के साथ नीच व्यवहार करेगा। ऐसे पुरुष के लिए कानून में बडे भारी दण्ड का विधान है। प्राय सभी उद्यानों मे ऐसे जल कुण्ड हैं,जो स्थान जिसके निकट हो वह वहीं आकर रविवार को आनन्द मनाता है।

कोई शायद पूछे कि क्या और रोज वहाँ जाना मना है ? ऐसा नहीं है। परन्तु कारण यह है कि अधिकाश लोगों को सिवा रविवार के और रोज छुट्टी ही नहीं मिलती। इस लिए रविवार को ही इन उद्यानो में लोग एकत्रित होते हैं। रोज सिर्फ कहीं कहीं टेनिस खेलते हुए स्त्री पुरुष दिखाई देते हैं। यह बात ग्रीष्मऋतु की है। जाड़े में जब इन कुण्डों का पानी जम जाता है तब वहा पर लोग "स्केटिंग" (Skating) करते हैं। स्केटिंग एक प्रकार का खेल है। हर साल दिसम्बर मे स्केटिंग का समय होता है। बेहद जाडा पड़ता है, पर बालक बालिकायें इन स्थानो में नाचती हुई दिखाई देती हैं।

लिङ्कन-उद्यान भी बहुत प्रसिद्ध है। इस में अमरीका के विख्यात योद्धा वीर-वर ग्राण्ट की मूर्ति है। अश्वारूढ ग्राण्ट इस देश के इतिहास के ज्ञाता को एक भयकर युद्ध का स्मरण कराते हैं। यह युद्ध गुलामों के व्यापार को बन्द कराने के लिए आपस में हुआ था। अमरीका के उत्तर के लोग चाहते थे कि गुलामों का व्यापार बन्द हो जाय। उनका सिद्धान्त था–"स्वतन्त्रता" की दृष्टि मे सब आदमी बराबर हैं"—जीवन और स्वतन्त्रता के स्वभाविक नियमों मे सब का हक एक सा है। वे नहीं चाहते थे कि अमरीका जैसे स्वतन्त्र देश में मनुष्य भेड़-बकरियों की तरह बिकें। इस सत्य सिद्धान्त की रक्षा के लिए एक लोमहर्षण युद्ध उत्तर और दक्षिण निवासियो में हुआ और परिणाम में सत्य की जय हुई। शूर वीर ग्राण्ट इस युद्ध में उत्तर वालों की ओर से सेनापति थे। वे काले हबशियों को वैसा ही चाहते थे जैसा कि गोरे चमड़े वाले अमरीका के निवासियों को। इस महात्मा का स्मारक चिन्ह दर्शक को एक

नया जीवन प्रदान करता है। वह उसे सूचना देता है कि किसी से घृणा मत करो, क्या काला, क्या गोरा, सब एक ही पिता के पुत्र हैं।

इस उद्यान के एक भाग में भिन्न भिन्न प्रकार के पौधे रखे हुए हैं। जो वृक्ष जिस तापमान में जी सकता है उसी के अनुसार वहां उसे उष्णता पहुचाई गई है और उसी की रक्षा की गई है। उष्ण देशों के कई वृक्ष यहा देखने में आते हैं। दर्शक को वनस्पति-विद्या सम्बन्धी बहुत सी बातें यहा मालूम हो जाती हैं।

उद्यानों के सिवा बहुत से और भी स्थान, लोगों के बैठने, उठने, हँसने खेलने, के लिए हैं। शिकागो बहुत बडा नगर है। इससे नगर निवासियो के आराम और शुद्धपवन की प्राप्ति के लिए, बीच बीच गलियों में, "बुलावार्डज" (Boulavards) नामक विहार-स्थल हैं। यहा की गलियाँ अपने देशों की जैसी नहीं हैं। गलियाँ क्या एक बाजार हैं। पत्थर के मकानों के आगे, दोनों किनारों पर, पाँच फीट के करीब रास्ता, सडक से ऊँचा, लोगों के चलने के लिए बना हुआ है। बीच की सडक गाडी, घोडे, मोटर आदि के लिए है। खुले मकानों और चौडी सडकों के कोने पर भी, हवा साफ रखने और गरीब आदमियों के मनोरजन तथा लाभ के लिए थोडी थोडी दूर पर विहार वाटिकायें हैं, जहा बैठने के लिए बेंचें रखी रहती हैं। काम से थके हुए स्त्री-पुरुष रोज सायकाल में यहा दिखाई देते हैं। क्यों कि और स्थानो मे गाने, बजाने और जल विहार आदि के लिए थोडा बहुत खर्च करना पडता है जो थोडी आमदनी के लोग नहीं कर सकते। उन के लिए ऐसे स्थानों, उद्यानों और अजायबघरों में घूमने की स्वतन्त्रता है। यत्न यह किया गया

है कि सब को इस स्वतन्त्र देश में आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिले। यहा जो धन व्यय किया जाता है वह, शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की उन्नति के लिए, किया जाता है।

यह तो हुई दिन की बात, अब रात की सुनिये। यहा बहुत से नाटक-घर, प्रदर्शनियाँ और समाज हैं, जहा अपनी अपनी रुचि के अनुसार लोग रात को जाते हैं। शिकागो में लाग अकसर रात को गिरजों में जाते हैं। रात को भी वहा उपदेश, गायन और हरिकीर्तन होता है। यहा एक जगह "ह्वाइट सिटी' (White City) श्वेत नगर है। बहुत से लोग वहा जाते हैं। इस जगह को श्वेत नगर इस लिए कहते हैं कि यहा बिजली की शुभ्र रोशनी होती है, जिससे रात को भी दिन ही सा रहता है। इस के विशाल द्वार पर बडे मोटे मोटे बिजली के प्रकाश के अक्षरों में "दि ह्वाइट सिटी (The White City) लिखा हुआ है। बिजली की महिमा यहा खूब ही देखने को मिलती है। स्थान स्थान पर प्रकाशमय रग बिरगे अक्षर-चित्र बने हुए हैं, जो मिनट मिनट में रग बदलते हैं। इस श्वेत नगर के भीतर अनेक मनोरञ्जक स्थान हैं, कहीं पर गाना हो रहा है, कहीं बडे बडे "हालों" में नाच हो रहा है, कहीं "सरकस" का तमाशा है। दुनिया भर के तमाशा करने वाले यहाँ लाये जाते हैं। गरमी के दिनों में वे, तीन ही चार मास में, हजारों रुपए कमा लेते हैं। यह स्थान एक कम्पनी का है। उस के नौकर सारी दुनिया में तमाशा करने वालों को लाने के लिए घूमा करते हैं। भारतवर्ष के यदि दो तीन अच्छे अच्छे पहलवान, किसी देशी कम्पनी के साथ, अमरीका में आवें तो हजारों रुपए कमा कर ले जाय। हमारे देश में अभी लोगों ने रुपया पैदा करने का ढङ्ग नहीं सीखा।

एक साधारण मनुष्य इंगलिस्तान से आकर, हिन्दुस्तान में विज्ञापनों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करके, लाखों बटोर कर ले जाता है, परन्तु हमारे स्वदेशी कारीगर, पहलवान, बाजीगर आदि कभी इस ओर आने का साहस नहीं करते। अमरीका में कुश्ती का शौक़ बढ़ रहा है। यदि इस समय कोई पहलवान थोड़ा सा रुपया खर्च कर के इधर आवे और किसी अच्छी कम्पनी की मारफत कुश्ती हो, तो लाखों रुपए के वारे न्यारे हो जाय।

इस श्वेत-नगर में रविवार को बड़ा भारी मेला होता है। गाड़िया स्त्री-पुरुषों से लदी हुई जाती हैं। हजारों दर्शक इकट्ठे होते हैं। रात के ८ बजे से ११ या १२ बजे तक मेला लगा रहता है। यह स्थान केवल गरमियों में खुलता है, क्योंकि जाड़ों में शीत के कारण यहा कोई नहीं आता। शीतऋतु के लिए नगर के भीतर और अनेक स्थान हैं जहाँ और ही तरह के मनोरञ्जक खेल होते हैं।

रविवार का दिन इस नगरी मे लोग इसी तरह व्यतीत करते हैं। अब यहाँ वालों की जीवन-चर्य्या का मिलान यदि हम भारत-वर्ष से करते हैं तो कितना बड़ा अन्तर पाते हैं। उन तमाशो या नाटकों की बात जाने दीजिए, जिन को हमारे बहुत से पाठक शायद अच्छा न समझें, पर और ऐसे कितने मनोरञ्जक या शिक्षा प्रद खेल तमाशे हैं जिन का हमारे स्वदेशी भाइयों को शौक है? वे अपने अवकाश को, अपनी छुट्टियों को किस तरह बिताते हैं? भग पीकर, ताश खेल कर, पतग उड़ा कर और व्यर्थ के बकवाद में लिप्त रह कर, वक्त की वे कीमत ही नहीं जानते। यद्यपि कुछ पढ़े लिखे लोग ऐसे हैं जो इन बुराइयों से बचे हुए हैं, परन्तु वे तीस करोड़ की उन संख्या में दाल में नमक के बराबर भी नहीं।

को हिन्दी में नहीं, बल्कि ब्रज भाषा में है। इसके उपरान्त लक्ष्मण सिंह ने शकुन्तला नाटक का अनुवाद किया था। यद्यपि यह नाटक भाषा आदि के विचार से बहुत अच्छा है, किन्तु मौलिक नाटक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह कालिदास कृत शकुन्तला नाटक का अनुवाद है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने तो मानो नाटक रचना से ही आधुनिक हिन्दी को जन्म दिया था। उन्हों ने लग भग बीस नाटक लिखे थे। जिन में से अधिकांश अनुवाद नहीं तो छायानुवाद अवश्य थे। तो भी उनके कई नाटक बहुत अच्छे हैं और अब भी अनेक स्थानों पर खेले जाते हैं। लाला श्री निवास दास कृत रणधीर प्रेम मोहिनी नाटक अवश्य अच्छा है पर वह इतना बड़ा है कि उस का पूरा पूरा अभिनय नहीं हो सका। यही दशा बल्कि इस से भी कुछ बढ़ कर पंडित बदरी नारायण चौधरी कृत 'भारत सौभाग्य' नाटक की है। पण्डित बालकृष्ण भट्ट कृत कई नाटक हैं सही, पर कई कारणों से उनका भी सर्व साधारण में कोई विशेष आदर नहीं है। हिन्दी में मृच्छकटिक नाटक के तीन अनुवाद हैं, पर एक भी रंगशाला के योग्य न होने के कारण सर्व प्रिय नहीं हो सका।

बाबू राधा कृष्णदास का महाराणा प्रताप नाटक अवश्य ऐसा है जिसका हिन्दी में बहुत कुछ आदर हुआ है और जिसका अनेक स्थानों पर अभिनय भी हुआ करता है। इन नाटकों के अतिरिक्त हिन्दी म गिनती के कुछ और मौलिक या संस्कृत से अनूदित नाटक भी हैं जो विशेष उल्लेख योग्य नहीं जान पड़ते। लाला सीताराम बी० ए० ने संस्कृत के कई नाटकों का अनुवाद किया है पर वे अनुवाद उतने अच्छे नहीं हैं। स्वर्गवासी पण्डित सत्यनारायण कवि-

हिन्दी नाटक और रंगशाला

(राय बहादुर बाबू श्याम सुन्दर दास)*

यो कहने को तो चाहे हिन्दी में नेवाज कृत 'शकुन्तला' नाटक, हृदयराम कृत 'हनुमान' नाटक, या ब्रजवासी दास कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि कई सौ वर्ष पहले के बने हुए कई नाटक वर्त्तमान हों, पर वास्तव में नाट्यकला की दृष्टि से वे नाटक नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उन रचनाओं में नाटक के नियम का पालन नहीं किया गया और वे काव्य ही काव्य हैं। हाँ, 'प्रभावती' और 'आनन्द रघुनन्दन' आदि कुछ नाटक अवश्य ऐसे हैं जो किसी प्रकार नाटक की सीमा में आ सकते हैं। कहते हैं कि हिन्दी का पहला नाटक बाबू हरिश्चन्द्र के पिता श्रीयुक्त बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरधर दास कृत 'नहुप' नाटक माना जाना चाहिए, पर वह भी साधारण बोल चाल

---

*आप का जन्म सन् १८७५ मे काशी में हुआ। काशी की प्रसिद्ध संस्था 'काशी नगरी प्रचारिणी' सभा को स्थापित करने का विशेष श्रेय आप को ही है। आप हिन्दी साहित्य के उन महारथियों में से हैं जिन पर हिन्दी भाषा को गर्व है। 'हिन्दी कोविद रत्नमाला' 'साहित्यालोचन' और 'भाषा विज्ञान' आदि ग्रन्थ आपकी विद्वत्ता के सूचक हैं। आप की भाषा और शैली सरस तथा परिमार्जित है। काशी नगरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी शब्द सागर' और 'मनोरञ्जक पुस्तकमाला' का सम्पादन कार्य आप ही करते हैं। 'पृथ्वी राजरासो' आदि कई प्राचीन ग्रन्थों का भी आप ने सम्पादन किया है।

को हिन्दी में नहा, बल्कि ब्रज भाषा में है। इसके उपरान्त लक्ष्मण सिंह ने शकुन्तला नाटक का अनुवाद किया था। यद्यपि यह नाटक भाषा आदि के विचार से बहुत अच्छा है, किन्तु मौलिक नाटक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह कालिदास कृत शकुन्तला नाटक का अनुवाद है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने तो मानो नाटक रचना से ही आधुनिक हिन्दी को जन्म दिया था। उन्हों ने लग भग बीस नाटक लिखे थे। जिन में से अधिकाश अनुवाद नहीं तो छायानुवाद अवश्य थे। तो भी उनके कई नाटक बहुत अच्छे हैं और अब भी अनेक स्थानों पर खेले जाते हैं। लाला श्री निवास दास कृत रणधीर प्रेम मोहिनी नाटक अवश्य अच्छा है पर वह इतना बडा है कि उस का पूरा पूरा अभिनय नहीं हो सका। यही दशा बल्कि इस से भी कुछ बढ कर पंडित बदरी नारायण चौधरी कृत 'भारत सौभाग्य' नाटक की है। पण्डित बालकृष्ण भट्ट कृत कई नाटक हैं सही, पर कई कारणों से उनका भी सर्व साधारण में कोई विशेष आदर नहीं है। हिन्दी में मृच्छकटिक नाटक के तीन अनुवाद हैं, पर एक भी रंगशाला के योग्य न होने के कारण सर्व प्रिय नहीं हो सका।

बाबू राधा कृष्णदास का महाराणा प्रताप नाटक अवश्य ऐसा है जिसका हिन्दी में बहुत कुछ आदर हुआ है और जिसका अनेक स्थानों पर अभिनय भी हुआ करता है। इन नाटकों के अतिरिक्त हिन्दी में गिनती के कुछ और मौलिक या संस्कृत से अनूदित नाटक भी हैं जो विशेष उल्लेख योग्य नहीं जान पडते। लाला सीताराम बी० ए० ने संस्कृत के कई नाटकों का अनुवाद किया है पर वे अनुवाद उतने अच्छे नहीं हैं। स्वर्गवासी पण्डित सत्यनारायण कवि-

रत्न कृत मालतीमाधव और उत्तररामचरित्र के अनुवाद अवश्य ऐसे हैं जो स्थायी साहित्य में स्थान पाने योग्य हैं। भारतेन्दु जी के कुछ काल अनन्तर हिन्दी में अनुवाद की धूम मची और बगला से अनेक उपन्यासों तथा नाटकों के अनुवाद प्रकाशित हुए। विशेषत काशी के भारत जीवन प्रेस से ऐसे कई नाटकों के अनुवाद निकले। इधर कुछ दिनों से इन अनुवादों की सख्या और भी बढ गई है जिन में से विशेष उल्लेख योग्य बगला के सुप्रसिद्ध नाटककार श्रीयुक्त द्विजेन्द्र लाल राय तथा गिरीश घोष के नाटको के अनुवाद हैं। राय महाशय के प्राय सभी नाटकों के सुन्दर अनुवाद बम्बई के हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय से प्रकाशित हुए हैं। पर इधर दस बीस वर्षों के अन्दर हिन्दी में मौलिक नाटक प्राय बने ही नहीं। इधर कुछ दिनों से काशी के श्रीयुक्त बाबू जयशंकर प्रसाद ने साहित्य के इस अग की पूर्ति की ओर ध्यान दिया है और उनको मौलिक नाटक लिखने में अच्छी सफलता भी हुई है। उन के लिखे हुए नाटकों में से अजात शत्रु जनमेजय का नागयज्ञ और विशाख आदि नाटक बहुत अच्छे हैं। आज कल कुछ धनवानों की कृपा से हिन्दी के लेखकों को अनेक प्रकार पुरस्कार आदि मिलने लगे हैं। इस से आशा होती है कि शीघ्र ही हिन्दी में मौलिक रचना का आरम्भ हो जायगा और साहित्य के अन्यान्य अगों के साथ ही साथ इस अग की भी शीघ्र ही और अच्छी पूर्ति होगी।

जहाँ नाटकों का ही अभाव हो, वहाँ नाटक-मडलियों और रग शालाओं के अभाव का क्या पूछना है। बगला, मराठी और गुजराती भाषा-भाषियों ने बहुत दिनों से अपनी अपनी भाषा में अच्छे

अच्छे मौलिक नाटकों की रचना आरम्भ कर रक्खी है और उन नाटकों के साथ ही साथ अपने अपने ढंग की रंगशालाएँ भी स्थापित कर ली हैं। उनकी अनेक अच्छी अच्छी नाटक मण्डलियाँ भी स्थापित हैं। उन रंगशालाओं और नाटक मण्डलियों के देखने से इस बात का ठीक अनुमान हो सकता है कि उन लोगों ने इस सम्बन्ध में कितनी उन्नति की है। और हिन्दी भाषा इस विषय में कितनी पिछड़ी हुई है। भारत में आधुनिक ढंग की रंगशालाओं और नाटक मण्डलियों की स्थापना बहुत थोड़े दिन पहले से अर्थात् गत शताब्दी के प्राय मध्य मे आरम्भ हुई है। इन पचास साठ वर्षों में ही यहां अँगरेजी ढँग की रंगशालाएँ बनने लगी हैं और उसी ढंग पर अभिनय होने लगे हैं। बंगला, मराठी और गुजराती नाट्य-शालाओं और नाटक-मण्डलियों आदि का आरम्भ और विकास इन्हीं थोड़े दिनों मे हुआ है। यद्यपि उसी समय के लग भग पहले पहल आधुनिक ढंग की रंगशालाओं मे हिन्दी नाटकों का भी प्रवेश हुआ था, तथापि हिन्दी के दुर्भाग्य से लोगों ने इस ओर विशेष ध्यान न दिया, जिस के कारण आज कल हिन्दी में नाटकों की दशा इतनी गिरी हुई है। यदि यह बात न होती तो आज हिन्दी के नाटक भी अन्यान्य भारतीय भाषाओं के नाटकों के समान बहुत उन्नत दशा में होते। सब से पहले बनारस के बनारस थियेटर में सन् १८६८ में पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी का बनाया हुआ "जानकी मंगल नाटक" बहुत धूम धाम से खेला गया था। इसकी देखा देखी प्रयाग और कानपुर के लोगों ने भी अपने अपने यहाँ "रणधीर-प्रेममोहिनी" और "सत्य हरिश्चन्द्र" का अभिनय किया था। इस के उपरान्त हिन्दी में अच्छे नए नाटकों के न बनने

के कारण रंग शालाओं में हिन्दी का प्रवेश न हो सका और हिन्दी भाषा भाषी प्राय पारसी थियेटरों के उर्दू नाटक देख कर ही सन्तुष्ट रहने लगे। कदाचित यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि बंगला, मराठी या गुजराती आदि के नाटकों को देखते हुए पारसी थियेटरों के उर्दू नाटक कितने अधिक कुरुचि पूर्ण और निकृष्ट होते हैं। पर फिर भी हिन्दी भाषा भाषी उन्हीं नाटकों के अभिनय देख कर अपने आप को धन्य माना करते थे। इधर पाँच सात वर्षों से पारसी कम्पनियों के थिएटरों में भी हिन्दी का प्रवेश हो चला है और दिन पर दिन उनमें खेले जाने वाले हिंदी नाटकों की सख्या बढती जाती है। अब तो कुछ ऐसी व्यवसायी मण्ड॰ लियाँ भी तैयार हो गई हैं जो बहुधा केवल हिंदी के ही नाटक खेला करती हैं। पारसी कम्पनियों मे तो अब कदाचित् ही कोई ऐसी हो जो दो चार हिंदी नाटकों का अभिनय न करती हो। इस सम्बन्ध में दिल्ली के पंडित नारायण प्रसाद बेताब का उद्योग परम प्रशंसनीय है जिन्हो ने पहले पहल महाभारत नाटक की रचना कर के और एक पारसी कम्पनी की रंगशाला में उस का अभिनय कराके लोगों का ध्यान कुरुचिपूर्ण नाटको की ओर से हटाया और उन्हें सुरुचिपूर्ण हिंदी नाटकों की ओर प्रवृत्त किया। अब प्राय सभी स्थानों मे लोग हिंदी नाटकों का अभिनय बडे चाव से देखा करते हैं, जिस से आशा है कि थोडे ही दिनों में हिंदी भी नाट्य क्षेत्र में भारत की अन्य भाषाओं के समकक्ष हो जायगी। इधर हिंदी में मौलिक नाटको की रचना भी आरम्भ हो चली है, और दिन पर दिन ऐसे नाटको की सख्या बढने की संभावना है। हमारे लिए ये दोनों ही बातें बहुत आशाजनक और उत्साहवर्द्धक हैं।

अजातशत्रु

(श्रीयुत जयशंकर प्रसाद)

पुरुष—पात्र

बिम्बसार—मगध सम्राट्

अजातशत्रु (कुणीक)—मगध का राजकुमार

प्रसेनजित—कोशल का राजा

गौतम—बुद्धदेव

देवदत्त (भिक्षु)—गौतम बुद्ध का प्रतिद्वन्द्वी

समुद्र दत्त—देवदत्त का शिष्य

जीवक—मगध का राजवैद्य

सुदत्त—कोशल का कोषाध्यक्ष

लुब्धक—शिकारी

स्त्री—पात्र

वासवी—मगध सम्राट् की बड़ी रानी (प्रसेनजित की बहिन)

छलना—मगध सम्राट् की छोटी रानी और राजमाता

पद्मावती—मगध की राजकुमारी (अजातशत्रु की सौतेली बहिन)

१

स्थान प्रकोष्ठ

(राजकुमार अजात शत्रु, पद्मावती, समुद्रदत्त और शिकारी लुब्धक)

अजात०—क्यों रे लुब्धक ! आज तू मृगशावक नहीं लाया ? मेरा चित्रक अब किस से खेलेगा ?

समुद्र०—कुमार ! यह बड़ा दुष्ट हो गया है । आज कई दिनों से यह मेरी बात सुनता ही नहीं ।

---

* आपका जन्म सन् १८८९ में काशी के एक समृद्ध घर में हुआ । क्वीन्स कालेजियेट स्कूल से आप ने मिडिल पास किया । इसी समय आप के

लुब्धक—कुमार! हम तो आज्ञाकारी अनुचर हैं। आज हमने जब एक मृगशावक को पकड़ा तो उसकी माता ने ऐसी करुणा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा कि उसे छोड़ देते ही बना। अपराध क्षमा हो।

अजात०—हाँ, तो फिर मैं तुम्हारी चमड़ी उधेड़ता हूँ। समुद्र! ला तो मेरा कोड़ा।

समुद्र०—(कोड़ा लाकर देता है)—लीजिए इसकी अच्छी पूजा कीजिए।

पिता का देहान्त हो गया। उसके बाद घर पर ही पंडित, मास्टर और मौलवी रखकर आप ने संस्कृत अंग्रेजी और फ़ारसी पढ़ी। अभी आप सत्रह ही वर्ष के थे कि आप के बड़े भाई का भी देहान्त हो गया। उसके बाद गृहस्थी जमींदारी दुकान और कारखाने का भार आपके ऊपर ही आ पड़ा। इस सारे बोझ को आप ने बड़ी योग्यता से सम्भाला। इतना बोझ होते हुए भी आप बड़ी अच्छी तरह साहित्य सेवा में लगे हुए हैं।

आप हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवि गल्प लेखक और नाटककार हैं। हिन्दी में छायावाद और भिन्न तुकान्त कविता (Blank varse) के जन्म दाता आप ही हैं। आप की गल्पें छोटी २ भावपूर्ण और एकदम मौलिक होती हैं।

अब तक आप की लग भग १५-१६ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ एक के नाम यहां दिये जाते हैं।

प्रेम पथिक, महाराणा का महत्व, अजात शत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, विशाख, आंसू, प्रतिध्वनि।

पद्मावती—(कोडा पकड कर)—भाई कुणीक ! तुम इतने दिनों में ही बड़े निष्ठुर हो गए। भला उसे क्यों मारते हो ?

अजात०—उसने मेरी आज्ञा क्यों नहीं मानी ?

पद्मा०—उसे मैंने ही मना किया था, उसका क्या अपराध ?

समुद्र०—(धीरे से) – तभी तो आज कल उसको गर्व हो गया है। किसी की बात नहीं सुनता।

अजात०—तो इस प्रकार तुम उसे मेरा अपमान करना सिखाती हो।

पद्मा०—यह मेरा कर्तव्य है कि तुम को अभिशापों से बचाऊं और अच्छी बातें सिखाऊं। जा रे लुब्धक, जा, चला जा। कुमार जब मृगया खेलने जावें तो उनकी सेवा करना। निरीह जीवों को पकड कर निर्दयता सिखाने में सहायक न होना।

अजात०—यह तुम्हारी बढ़ाबढ़ी मैं सहन नहीं कर सकता।

पद्मा०—मानवी सृष्टि करुणा के लिए है, यों तो क्रूरता के निदर्शन हिंस्र पशु, जगत में क्या कम हैं।

समुद्र०—देवी ! करुणा और स्नेह के लिए तो स्त्रियाँ जगत में हुई हैं, किन्तु पुरुष भी क्या वही हो जाँय ?

पद्मा०—चुप रहो समुद्र ! क्या क्रूरता ही पुरुषार्थ का परिचय है ? ऐसी चाटूक्रिया भावी शासक को अच्छा नहीं बनाती।

(छलना का प्रवेश)

छलना—पद्मावती ! यह तुम्हारा अविचार है। कुणीक का हृदय छोटी छोटी बातों में तोड देना, उसे डरा देना उसकी मानसिक उन्नति में बाधा देना है।

पद्मा०—माँ, यह क्या कह रही हो ! कुणीक मेरा भाई है, मेरे

सुखों की आशा है, मैं उसे कर्त्तव्य क्यों न बताऊँ ? क्या उसे चाटुकारों की चाल में फँसते देखूं और कुछ न कहूँ।

छलना—तो क्या तुम उसे बोदा और डरपोक बनाना चाहती हो ? क्या निर्बल हाथों से भी कोई राजदण्ड ग्रहण कर सकता है?

पद्मा०—माँ क्या कठोर और क्रूर हाथों से ही राज्य सुशासित होता है ? ऐसा विषवृक्ष लगाना क्या ठीक होगा ? अभी कुणीक किशोर है, यही समय सुशिक्षा का है। बच्चों का हृदय कोमल थाला है, चाहे इसमें कटीली झाड़ी लगा दो, चाहे फूलों के पौधे।

कुणीक०—फिर तुम ने मेरी आज्ञा क्यों भंग होने दी ? क्या दूसरे अनुचर इसी प्रकार मेरी आज्ञा का तिरस्कार करने का साहस नहीं करेंगे ?

छलना—यह कैसी बात ?

कुणीक—मेरे चित्रक के लिए जो मृग आता था उसे ले आने के लिए लुब्धक रोक दिया गया। आज वह कैसे खेलेगा ?

छलना—पद्मा ! क्या तू इस की मंगल-कामना करती है ! इसे अहिंसा सिखाती है, जो भिक्षुकों की भोंडी सीख है। जो राजा होगा, जिसे शासन करना होगा, वह भिखमंगों का पाठ नहीं पढ़ सकता। राजा का परम धर्म न्याय है, वह दण्ड के आधार पर है। क्या तुझे नहीं मालूम कि वह भी हिंसामूलक है ?

पद्मा०—माँ ! क्षमा हो। मेरी समझ में तो मनुष्य होना राजा होने से अच्छा है।

छलना—तू कुटिलता की मूर्त्ति है। कुणीक को अयोग्य शासक बना कर उस का राज्य आत्मसात करने के लिए कौशाम्बी से आई है।

पद्मा०—मा ! बहुत हुआ, अन्यथा तिरस्कार न करो मैं आज ही चली जाऊँगी।

(वासवी का प्रवेश)

वासवी—वत्स कुणीक ! कई दिनों से तुम को देखा नहीं। मेरे मन्दिर मे इधर क्यों नहीं आए ? कुशल तो है ?

(कुणीक के सिर पर हाथ फेरती है)

कुणीक—नहीं माँ, मैं तुम्हारे यहा न आऊँगा, जब तक पद्मा घर न जायगी।

वासवी—क्यों ! पद्मा तो तुम्हारी ही बहन है। उसने क्या अपराध किया है ? वह तो बडी सीधी लडकी है।

छलना—(क्रोध से)—वह सीधी और तुम सीधी हो। आज से कभी कुणीक तुम्हारे पास न जाने पावेगा और तुम भी यदि भलाई चाहो तो प्रलोभन न देना।

वासवी—छलना ! बहिन !! यह क्या कह रही हो। मेरा वत्स कुणीक ! प्यारा कुणीक ! हा भगवन् मैं उसे देखने न पाऊँगी। मेरा क्या अपराध—

कुणीक—यह पद्मा, बार बार मुझे अपदस्थ किया चाहती है, और जिस बात को मैं कहता हूँ उसे ही रोक देती है।

वासवी—यह मैं क्या देख रही हू। छलना यह गृह विद्रोह की आग तू क्यो जलाया चाहती है। राजपरिवार में क्या सुख अपेक्षित नहीं है—

बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नेह बढा उन के मन में
कुल-लक्ष्मी हों मुदित, भरा हो मगल उनके जीवन में,
बन्धु वर्ग हों सम्मानित, हों सेवक सुखी प्रणत अनुचर,

शान्तिपूर्ण हो स्वामी का मन, तो स्पृहणीय न हो क्यों घर ?

छलना—यह जिन को खाने को नहीं मिलता, उन्हें चाहिए। जो प्रभु हैं, जिन्हें पर्याप्त है, उन्हें किसी की क्या चिन्ता-जो व्यर्थ अपनी आत्म को दबावें।

वासवी—क्या तुम मेरा भी अपमान किया चाहती हो। पद्मा तो जैसी मेरी, वैसी तुम्हारी, उसे कहने का तुम्हें अधिकार है। किन्तु तुम तो मुझ से छोटी हो, शील और विनय का यह दुष्ट उदाहरण सिखा कर बच्चों की क्यों हानि कर रही हो।

छलना—(स्वगत) मैं छोटी हूँ, यह अभिमान तुम्हारा अभी गया नहीं है।—(प्रकट)—मैं छोटी हू, या बडी, किन्तु राज माता हू। अजात को शिक्षा देने का मुझे अधिकार है। उसे राजा होना है। वह भिखमगों का–जो अकर्म्मण्य हो कर राज्य छोड कर दरिद्र हो गये हैं—उपदेश नहीं ग्रहण करने पावेगा।

पद्मा०—मा, अब चलो ! यहाँ से चलो। नहीं तो मैं ही जाती हू।

वासवी—चलती हू बेटी। किन्तु छलना—सावधान ! यह असत्य गर्व मानव समाज का बडा भारी शत्रु है।

(पद्मा और वासवी जाती हैं)

(पट–परिवर्त्तन)

२

स्थान राजकीय प्रकोष्ठ

(महाराज बिम्बसार एकाकी बैठे हुए आप ही आप कुछ विचार कर रहे हैं)

म० बिम्बसार—अहा, जीवन की क्षण-भगुरता देख कर भी

मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। वह व्यर्थ 'महत्त्व की आकांक्षा में मरता है, अपनी नीची, किन्तु सुदृढ परिस्थिति में उसे संतोष नहीं होता। नीचे से ऊँचे चढना ही चाहता है। चाहे फिर गिरे तो भी क्या ?

छलना—(प्रवेश कर के)—और नीचे के लोग वहीं रहें। वे मानो कुछ अधिकार नहीं रखते ? ऊपर वालों का यह क्या अन्याय नहीं है ?

बिम्बसार—(चौंक कर)—कौन छलना ?

छलना—हां, महाराज ! मैं ही हूँ।

बिम्बसार—तुम्हारी बात मैं नहीं समझ सका।

छलना—साधारण जीवों में भी उन्नति की चेष्टा दिखाई देती है। महाराज ! इस की बडी चाह है। महत्त्व का यह अर्थ नहीं है कि सब को क्षुद्र समझे।

बिम्बसार—तब।

छलना—यही कि मैं छोटी हूँ इसी लिए पटरानी नहीं हो सकी और वह मुझे इसी बात पर अपदस्थ किया चाहती है।

बिम्बसार—छलना ! यह क्या ! तुम तो राजमाता हो ! देवी वासवा के लिए थोड़ा सा भी सम्मान कर लेना तुम्हें विशेष नीचा नहीं बना सकता—उसने कभी तुम्हारी अवहेलना भी तो नहीं की।

छलना—मैं इन भुलावों मे नहीं आ सकती। महाराज ! मेरी धमनियों मे लिच्छिवी रक्त बडी शीघ्रता से दौडता है। यह नीरव अपमान, यह सांकेतिक घृणा, मुझे सहन नहीं। और जब कि खुल कर अजात का अपकार किया जा रहा है तब तो—

बिम्बसार—ठहरो ! तुम्हारा यह अभियोग अन्याय पूर्ण है।

क्या इसी कारण तो बेटी पद्मावती नहीं चली गई ? क्या इसी कारण तो अजात मेरी भी आज्ञा सुनने में आनाकानी करने नहीं लगा है ? यह कैसा उत्पात मचाया चाहती हो ?

छलना—मैं उत्पात रोकना चाहती हूँ। आपको अजात के लिए युवराज्याभिषेक की घोषणा आज ही करनी पड़ेगी।

वासवी—(प्रवेश कर के)—नाथ, मैं भी इस में सहमत हूं। मैं चाहती हूं कि यह उत्सव देख कर और आप की आज्ञा लेकर मैं कोशल जाऊँ। सुदत्त आज आया है, भाई ने मुझे बुलाया है।

बिम्बसार—कौन, देवी वासवी !

वासवी—हां महाराज !

कञ्चुकी—(प्रवेश कर के)—महाराज ! जय हो ! भगवान तथागत गौतम आना चाहते हैं।

बिम्बासार—सादर लिवा ला—(कञ्चुकी का प्रस्थान)

छलना ! हृदय का आवेग कम करो, महाश्रमण के सामने दुर्बलता न प्रकट होने पावे—

(अजात को साथ लिए हुए गौतम का प्रवेश)

(सब नमस्कार करते हैं)

गौतम—कल्याण हो ! शान्ति मिले !

बिम्बसार—भगवन् आपने पधार कर मुझे अनुगृहीत किया।

गौतम—राजन् ! कोई किसी को अनुगृहीत नहीं करता है। विश्वभर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है, जो प्राणीमात्र में समदृष्टि रखती है।

बिम्बसार—भगवान की शान्त वाणी की धारा प्रलय की नरकाग्नि को भी बुझा देगी। मैं कृतार्थ हुआ—

छलना—(नीचा सिर कर के)—यदि आज्ञा हो तो मैं जाऊँ ?

गौतम—रानी ! तुम्हारे पति और देश के सम्राट् के रहते मुझे कोई अधिकार नहीं है कि तुम्हें आज्ञा दू । तुम इन्हीं से आज्ञा ले सकती हो ।

बिम्बसार—(घूर कर देखते हुए)—हाँ छलने ! तुम जा सकती हो ! किंतु अजात को न ले जाना—क्योंकि तुम्हारा मार्ग टेढा है । (छलना का क्रोध से प्रस्थान)

गौतम—यह तो मैं पहले से ही समझता था, किन्तु छोटी रानी को और तुम लोगों को भी विचार से काम लेना चाहिए ।

बिम्बसार—भगवन् ! हमारा क्या अविचार आप ने देखा ?

गौतम—शीतल वाणी-मधुर व्यवहार-से क्या वन्य पशु भी वश में नही हो जाते ? राजन्, ससार भर के उपद्रवों का मूल व्यग है । हृदय में जितना यह घुसता है, उतनी कटार नहीं। वाक्संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है । अस्तु, अब मैं तुम से एक काम की बात कहा चाहता हू । क्या तुम मानोगे—क्यों महारानी ?

बिम्बसार—अवश्य ।

गौतम—तुम आज ही अजातशत्रु को युवराज बना दो । और इस भीषण भोग से कुछ विश्राम लो। क्यों कुणीक ! तुम राज्य का कार्य मन्त्रि-परिषद की सहायता से चला सकोगे ?

कुणीक—क्यों नहीं । पिता जी यदि आज्ञा दें ।

गौतम—यह बोझ, जहाँ तक शीघ्र हो, यदि एक अधिकारी व्यक्ति को सौंप दिया जाय तो मानव को प्रसन्न ही होना चाहिए । क्यों कि राजन्, इस से कभी न कभी तुम हटाये जाओगे, जैसा कि विश्व भर का नियम है । फिर, यदि तुम उदारता से उसे भोग

कर छोड दो तो इस में क्या दुःख—

बिम्बसार—योग्यता होनी चाहिए महाराज। यह बडा गुरुतर कार्य है। नवीन रक्त राज्यश्री को सदैव तलवार के दर्पण में देखा चाहता है।

गौतम—(हस कर)—ठीक है। किन्तु, काम करने के पहले तो किसी ने भी आज तक विश्वस्त प्रमाण नहीं दिया कि वह कार्य के योग्य है। यह बहाना तुम्हारी राज्याधिकार की आकांक्षा प्रकट कर रहा है। राजन्! समझ लो, इस गृह विवाद और आन्तरिक झगडों से विश्राम लो।

(पट-परिवर्तन)

३

स्थान—कोशल में श्रावस्ती का दरबार

(प्रसेनजित सिंहासन पर और अमात्य अनुचरगण यथा स्थान बैठे हैं)

प्रसेनजित—क्या यह सच है? सुदत्त, तुम ने आज मुझे एक बडी आश्चर्यजनक बात सुनाई है। क्या सचमुच अजातशत्रु ने अपने पिता को सिंहासन से उतार कर उनका तिरस्कार किया है?

सुदत्त—पृथ्वीनाथ! यह उतना ही सत्य है जितना कि श्रीमान् का इस समय सिंहासन पर विराजना सत्य है। मगधनरेश से एक षडयन्त्र द्वारा सिंहासन छीन लिया गया है?

(दौवारिक आता है)

दौवारिक—महाराज की जय हो। मगध से जीवक आये हैं।

प्रसेन०—जाओ लिवा लाओ।

(दौवारिक जाता है और जीवक को लिवा लाता है)

जीवक—जय हो—कोशलनरेश की।

प्रसेन०—कुशल तो है जीवक ! तुम्हारे महाराज की तो सब बातें हम सुन चुके हैं, उन्हें दुहराने की कोई आवश्यकता नहीं, हाँ, कोई नया समाचार हो तो कहो।

जीवक—दयालु-देव, कोई नया समाचार नहा है। केवल अपमान की यन्त्रणा ही महादेवी वासवी को दुखित कर सकती है। और कुछ नहीं।

प्रसेन०—तुम लोगों ने तो राजकुमार को अच्छी शिक्षा दी। अस्तु, देवी वासवी को अपमान भोगने की आवश्यकता नहीं। उन्हें अपने सपत्नी पुत्र के भिक्षान्न पर जीवन निर्वाह नहीं करना होगा। मन्त्री! काशी की प्रजा के नाम एक पत्र लिखो कि वह अजात को राज कर न देकर वासवी को अपना कर प्रदान करे। क्यों कि उसे मैंने वासवी को दिया है, सपत्नी पुत्र का उस पर कोई अधिकार नहीं है।

जीवक—महाराज! देवी वासवी ने कुशल पूछा है और कहा है कि इस अवस्था में मैं आर्यपुत्र को छोड़ कर नहीं आसकती, इस लिए भाई कुछ अन्यथा न समझेंगे।

प्रसेन०—जीवक! यह तुम क्या कहते हो। कोशल-कुमारी दशरथनन्दिनी शान्ता का उदाहरण उस के समक्ष है। दरिद्र ऋषि के साथ वह दिव्य जीवन व्यतीत कर सकती थी। क्या वासवी किसी दूसरे कोशल की राजकुमारी है? कुलशील पालन यही तो आर्य्य ललनाओं का परमोज्ज्वल रत्न है। स्त्रियों का यही मुख्य धन है। अच्छा, जाओ विश्राम करो। (जीवक का प्रस्थान)

(पट परिवर्त्तन)

४

महाराज बिम्बसार का गृह

(बिम्बसार और वासवी)

बिम्ब०—कोमल पत्तियों को, जो अपनी डाली पर निरीह लटका करती है, प्रभञ्जन क्यों झिझोडता है।

वासवी—उसकी गति है, वह किसी को कहता नहीं कि तुम मेरे मार्ग में अडो, जो साहस करता है, उसे हिलना पड़ता है। नाथ ! समय भी इसी तरह चला जा रहा है, उस के लिए पहाड़ और पत्ता बराबर है।

बिम्ब०—फिर उसकी गति तो सम नहीं है। ऐसा क्यों ?

वासवी—यही समझाने के लिए बड़े बडे दार्शनिकों ने कई तरह की व्याख्यायें की हैं, फिर भी प्रत्येक नियमों में अपवाद लगा दिए हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपवाद नियम पर है या नियामक पर। सम्भवत इसे ही लोग बवंडर कहते हैं।

बिम्बसार—तब तो देवी ! प्रत्येक असम्भावित घटना के मूल में यही बवडर है। सच तो यह है कि विश्वभर में स्थान स्थान पर वात्याचक्र हैं, जल में उसे भँवर कहते हैं, स्थल पर उसे बवंडर कहते हैं, राज्य में विप्लव, समाज में उच्छृङ्खलता कहते हैं और धर्म में पाप कहते हैं। चाहे इन्हे नियमों का अपवाद कहो चाहे बवडर—यही न ?

(छलना का प्रवेश)

बिम्बसार—यह लो हम लोग तो बवंडर की बातें करते थे, तुम यहा कैसे पहुच गई ! राजमाता महादेवी को इस दरिद्र कुटीर में क्या आवश्यकता हुई ?

छलना—मैं बवंडर हूँ - इसी लिए जहां मैं चाहती हूँ असम्भावित रूप से चली आती हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस में कितनी सामर्थ्य है—इस में आवर्त्त उत्पन्न कर सकती हूँ कि नहीं।

वासवी—छलना ! बहिन ! तुम को क्या हो गया है ?

छलना—प्रमाद—और क्या। अभी सन्तोष नहीं हुआ, इतने उपद्रव करा चुकी हो, और भी कुछ शेष है ?

वासवी—क्यों अजात तो अच्छी तरह है ? कुशल तो है ?

छलना—क्या चाहती हो ? समुद्रदत्त तो काशी में मारा ही गया। कोशल और मगध में युद्ध का उपद्रव हो रहा है। अजात उस में गया है। साम्राज्य भर में आतङ्क है।

बिम्बसार—युद्ध में क्या हुआ ?—(मुंह फिरा कर)—अथवा मुझे क्या ?

५

स्थान—मगध में राजकीय भवन

(छलना और देवदत्त)

छलना—धूर्त्त ! तेरी प्रवञ्चना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई, पुत्र बन्दी हो कर विदेश को गया और पति को मैं स्वयं बन्दी बनाये हूँ। पाखण्ड, तू ने ही यह चक्र रचा है।

देवदत्त—नारी ! क्या तुझे राजशक्ति का घमण्ड हो गया है। जो हम परिव्राजकों से इस तरह की बातें करती है ? तेरी राजलिप्सा और महत्वाकांक्षा ने ही तुझसे सब कुछ कराया। तू दूसरे पर क्यों दोषारोपण करती है, क्या मुझे ही राज भोगना है ?

छलना—पाखण्ड ! जब तूने धर्म के नाम पर उत्तेजित करके

मुझे कुशिक्षा दो, तब नहीं सोचा। गौतम को कलंकित करने के लिए कौन श्रावस्ती गया था? और किसने मतवाला हाथी दौड़ाकर उनके प्राण लेने की चेष्टा की थी? ओह! मैं किस भ्रान्ति में थी। जी चाहता है कि इस नरपिशाच मूर्ति को अभी मिट्टी में मिला दूं। प्रतिहारी!

प्रतिहारी—(प्रवेश करके) महादेवी की जय हो। क्या आज्ञा है?

छलना—अभी इस मुंडिये को बन्दी बनाओ और वासवी को पकड़ लाओ।

(प्रतिहारी इंगित करता है, देवदत्त बन्दी होता है)

देवदत्त—इसका फल तुझे मिलेगा।

छलना—घायल बाघिनी को भय दिखाता है! आषाढ की पहाड़ी नदी को हाथों से रोक लेना चाहता है! देवदत्त ध्यान रखना इस अवस्था मे नारी क्या नहीं कर सकती। अब तेरा अभिशाप मुझे नहीं डरा सकता। तू अपने कर्म भोगने के लिए प्रस्तुत होजा।

(वासवी का प्रवेश)

छलना—अब तो तुम्हारा हृदय संतुष्ट हुआ?

वासवी—क्या कहती हो छलना? अजात बन्दी हो गया तो मुझे सुख मिला, यह बात कैसे तुम्हारे मुख से निकली? क्या वह मेरा पुत्र नहीं है?

छलना—मीठे मुँह की डायन! अब तेरी बातों से मैं ठंडी नहीं होने की! ओह इतना साहस, इतनी कूट चातुरी! आज मैं उसी हृदय को निकाल लूंगी, जिसमें यह सब भरे थे। वासवी सावधान! मैं भूखी सिंहनी हो रही हूं।

वासवी—छलना ! उसका मुझे डर नहीं है । यदि तुम्हें इसमें कोई सुख मिले तो तुम करो । किन्तु एक बात और विचार लो—क्या कोशल के लोग जब मेरी यह अवस्था सुनेंगे तो अजात को और शीघ्र मुक्त कर देने के बदले कोई दूसरा काण्ड न उपस्थित करेंगे?

छलना—तब क्या होगा ?

वासवी—जो होगा वह तो भविष्य के गर्भ में है किन्तु मुझे एक बार कोशल अनिच्छा पूर्वक भी जाना ही होगा और अजात को ले आने की चेष्टा करनी ही होगी ।

छलना—यह और भी अच्छा बतलाया-जो हाथ का है उसे भी जाने दूं ! क्यों वासवी ! पद्मावती को पढ़ा रही हो ?

वासवी—बहिन छलना ! मुझे तुम्हारी बुद्धि पर खेद होता है । क्या मैं अपने प्राण को डरती हूं, या सुख भोग के लिए जा रही हूँ ? ऐसी अवस्था में आर्यपुत्र को मैं छोड कर चली जाऊँगी, ऐसा भी तुम्हें अबतक विश्वास है ? मेरा उद्देश्य केवल विवाद मिटाने का है ।

छलना—इसका प्रमाण ?

वासवी—प्रमाण आर्यपुत्र हैं । छलना चौंको मत । तुम भी उन्हीं की परिणीता पत्नी हो तब भी, तुम्हारे विश्वास के लिये मैं उन्हें तुम्हारी देख रेख में छोडे जाऊगी । हा इतनी प्रार्थना है कि उन्हें कोई कष्ट न होने पावे, और क्या कहू वे ही तुम्हारे भी पति हैं हा देवदत्त को मुक्त कर दो । चाहे इसने कितना भी हम लोगों का अनिष्ट चिन्तन किया है फिर भी परिव्राजक मार्जनीय है ।

छलना—(प्रहरियों से) छोड दो इसको, फिर काला मुख मगध में न दिखावे (प्रहरी छोड़ते हैं, देवदत्त जाता है)

वासवी—देखो राज्य में आतङ्क न फैलने पावे। दृढ होकर मगध का शासन करना। किसी को कष्ट भी न हो। और प्यारी छलना! हो सके तो आर्यपुत्र की सेवा कर नारी-जन्म सार्थक कर लेना।

छलना—वासवी! बहिन!—(रोने लगती है मेरा कुणीक मुझे दे दो मैं भीख माँगती हूं। मैं नहीं जानती थी कि निसर्ग से इतनी करुणा और इतना स्नेह सन्तान के लिए सञ्चित था। यदि जानती होती तो इस निष्ठुरता का स्वाग न करती।

वासवी—रानी! यही जो जानती कि नारी का हृदय कोमलता का पालना है दया का उद्गम है शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है तो पुरुषार्थ का ढोंग क्यों करती। रो मत बहिन! मैं जाती हूं तू-यही समझ कि कुणीक ननिहाल गया है।

छलना—तुम जानो।

६

कोशल के वन्दी गृह में अजातशत्रु बैठा है

(वासवी और प्रसेनजित का प्रवेश)

प्रसेन—क्यों कुणीक, अब क्या इच्छा है?

वासवी—न न, भाई? खोल दो। इसे मैं इस तरह देख कर बात नहीं कर सकती हूं। मेरा बच्चा कुणीक

प्रसेन०—बहिन! जैसा कहो। (खोल देता है वासवी अङ्क में ले लेती है)

अजात०—कौन! विमाता? नहीं तुम मेरी माँ हो! माँ इतनी ठढी गोद तो मेरी माँ की भी नहीं है। आज मैंने जननी की शीतलता का अनुभव किया है। मैंने बडा अपमान किया है। माँ!

क्या तुम क्षमा करोगी ?

वासवी– वत्स कुणीक ! वह अपमान भी क्या अब मुझे स्मरण है । तुम्हारी माता, तुम्हारी माँ नहीं है, मैं तुम्हारी माँ हू । वह तो डाइन है, उसने मेरे सुकुमार बच्चे को बन्दी गृह में भेज दिया । भाई, मैं इसे शीघ्र मगध के सिंहासन पर भेजना चाहती हूँ तुम इसके जाने का प्रबन्ध कर दो ।

अजात०–नहीं माँ, अब उस विषैली वायु से अलग रहने दो । तुम्हारी शीतल छाया का विश्राम मुझसे अभी नहीं छोड़ा जायगा ।

(घुटने टेक देता है, वासवी अभय का हाथ रखती है)

(पट– परिवर्तन)

स्थान—महाराज बिम्बसार की कुटीर

(बिम्बसार लेटे हुए हैं)

बिम्बसार—(उठकर आपही आप) यदि मैं सम्राट् न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलयों के झुरमुट में एक अधखिला फूल होता और ससार की दृष्टि मुझ पर न पड़ती–पवन की किसी लहर को सुरभित करके धीरे से उस थाले में चू पड़ता— तो इतना भीषण चीत्कार इस विश्व में न मचता । भगवान, अनन्त ठोकरें खाकर लुढकते हुए जड़ ग्रहपिण्डों से भी तो इस चेतन मानव की बुरी गत है ! धक्के पर धक्के खाकर यह निर्लज्ज सभा से नही निकलना चाहता कैसी विचित्रता है । अहा ! वासवी भी नहीं है । कब तक आवेगी ।

जीवक —(प्रवेश करके)—सम्राट् ?

बिम्बसार–चुप ? यदि मेरा नाम न जानते हो तो मनुष्य कह कर पुकारो । यह भयानक सम्बोधन मुझे न चाहिए ।

जीवक — कई रथ द्वार पर आए हैं और राजकुमार कुणीक भी आरहे हैं।

विम्बसार—कुणीक कौन? मेरा पुत्र, या मगध का सम्राट अजात शत्रु?

अजात—(प्रवेश करके) पिता! आपका पुत्र, यह कुणीक सेवा में प्रस्तुत है।—(पैर पकड़ता है)

विम्बसार—नहीं, नहीं, मगधराज अजातशत्रु को सिंहासन की मर्यादा नहीं भंग करना चाहिए। मेरे दुर्बल चरण—आह छोड़ दो।

अजात—नहीं पिता! पुत्र का यही सिंहासन है। आपने झूठा सोने का सिंहासन देकर मुझे इस सत्य अधिकार से वञ्चित किया। अवाध्य पुत्र को भी कौन क्षमा करता है?

विम्बसार—पिता। किन्तु वह पुत्र को क्षमा करता है। सम्राट् को क्षमा करने का अधिकार पिता को कहाँ?

अजात—नहीं पिता, मुझे भ्रम हो गया था। मुझे अच्छी शिक्षा नहीं मिली थी। मिला था केवल जगलीपन की स्वतंत्रता का अभिमान। अपने को विश्व-भर से स्वतंत्र जीव समझने का झूठा आत्मसम्मान।

विम्बसार—वह भी तो तुम्हारे गुरुजन की ही दी हुई शिक्षा थी। तुम्हारी माँ थी—राजमाता।

अजात—वह केवल मेरी माँ थी—एक सम्पूर्ण अंग का आधा भाग, उस में पिता की छाया न थी—पिता! इस लिए आधी शिक्षा अपूर्ण ही होगी।

छलना—(प्रवेश करके चरण पकड़ती है) नाथ! मुझे

निश्चय हुआ कि वह मेरी उद्दण्डता थी। वह मेरी कूट चातुरी थी, दम्भ का प्रकोप था। नारी-जीवन के स्वर्ग से मैं वञ्चित कर दी गई। ईंट पत्थरों के महल रूपी बन्दीगृह में मैं अपने को धन्य समझने लगी थी। दण्डनायक! मेरे शासक! क्यों न उसी समय शील और विनय भङ्ग करने के अपराध में मुझे आपने दण्ड दिया। क्षमा करके, सहन करके, जो आपने इस परिणाम की यन्त्रणा के गर्त्त में मुझे डाल दिया है, वह मैं भोग चुकी अब उबारिये।

बिम्बसार—छलना दण्ड देना मेरी सामर्थ्य के बाहर था। अब देखू कि क्षमा करना भी मेरे सामर्थ्य में है कि नहीं।

वासवी—(प्रवेश करके)—आर्य पुत्र! अब मैंने इस को दण्ड दे दिया है, यह मातृत्व पद से च्युत की गई है, अब इस को आप के पौत्र की धात्री का पद मिला है। एक राजमाता को इतना बडा दण्ड कम नहीं है। अब आपको क्षमा करना ही होगा।

बिम्बसार—वासवी! तुम मानवी हो कि देवी?

वासवी—बता दू! मैं मगध के सम्राट् की राजमहिषी हू। और, यह छलना मगध के राजपौत्र की धाई है, और यह कुणीक मेरा बच्चा इस मगध का युवराज है। और आप को भी

बिम्बसार—मैं अच्छी तरह अपने को जानता हू वासवी।

वासवी—क्या?

बिम्बसार—कि मैं मनुष्य हू और इन मायाविनी स्त्रियों के हाथ का खिलौना हू।

वासवी—तब तो महाराज मैं जैसा कहती हू वैसा ही कीजिये नहीं तो आपको लेकर मैं नहीं खेलूंगी।

बिम्बसार—तो तुम्हारी विजय हुई वासवी! क्यो अजात! पुत्र

कर्मवीर महाराणा प्रताप

(श्रीयुत गणेश शंकर विद्यार्थी)*

महाराणा प्रताप के यहा अच्छा आदर सत्कार पाने पर भी विभीषण मानसिंह चित्तौड के कुमार से बोला, "राणा जी के सिर में जो दर्द है उसकी दवा लेकर शीघ्र ही लौटूँगा।" विभीषण चिकित्सक मानसिंह शीघ्र ही लौटा। हल्दीघाटी के मैदान ने इस सुयोग्य चिकित्सक का आवाहन किया। प्रताप भी अपनी कठिनाइयो का पहला पाठ पढने के लिए इस रणक्षेत्र की ओर आगे बढा। २२००० साथी—लेकिन अन्त में आठ हजार ही बचे, शेष सब प्रताप को गुरु दक्षिणा में देने पडे। घमासान युद्ध। प्राणों का बाजार पूरा गरम। भीषणता, और उसका सच्चा महत्व उसी समय समझ सकते हो, जब एक किसान की कुटी की शान्ति और सौम्यता से इस दृश्य की तुलना करो। मनुष्य की पाशविक शक्ति का पूरा नमूना, लेकिन, साथ ही ससार के उज्ज्वल गुणों का पूरा खजाना। मर रहे और मारे जा रहे हैं। एक पर एक टूट रहे हैं, और एक पर एक गिर रहे हैं। ढाल—लेकिन अन्त में कोमल

---

* आप का इतना ही परिचय पर्याप्त है कि आप हिन्दी के सर्व-श्रेष्ठ पत्र "प्रताप" के जन्मदाता और सपादक हैं। सन् १६१३ से बड़ी लगन से इसे निकाल रहे हैं। उससे पहले आप "अभ्युदय" के सम्पादकीय विभाग में थे। कुछ दिन आपने "प्रभा" का भी सम्पादन किया था। आप की कलम में बेहद जोर है। आप का अपना खास स्टाइल है।

शरीर ही ढाल का काम देते हैं। तलवार—मनुष्य के रक्त की तरलता देख कर उस का पानी और भी तरल हो जाता है। बर्छियां जरा सा भी अन्याय नहीं करतीं। इस यज्ञ कुण्ड में, प्रताप! तुम अपनी जान की बार बार आहुति दे रहे हो। लेकिन तुम इस तरह से छुटकारा नहीं पा सकते, तुम्हे ससार मे रह कर ससार से सग्राम करना है। मानसिंह! वह—विभीषण दवा लेकर प्रताप के सामने न आ सका। ओह! सलीम बच्चा है, छोडो प्रताप, उसे छोडो! आह, अब तुम बेतरह घिर गये! तुम अकेले, और ये मुगल सिपाही सैंकडों! तुम्हारा मुकुट इस समय तुम्हारा शत्रु हो गया है। फेंक दो उसे! अरे फेंक दो उसे! लेकिन कितने मारोगे, एक, दो, तीन—अरे, वे आते ही जाते है, अब भी फेंक दो, फेंको भी! देश और जाति को, नहीं, ससार को, तुम्हारी जान, तुम्हारे सोने के तुच्छ मुकुट मे ज्यादा प्यारी है। नहीं फेंकोगे? अच्छा राजपूत वीरो! आगे बढो, देखो, तुम्हारा अधिपति मुफ्त ही में जा रहा है! बढो आगे, बचाओ, बचाओ! हाँ, सरदारी के झाला! तुम! हाँ, बढो! बस ठीक! झाला के सिर पर मुकुट है! मुगल तलवारें झाला पर पडने लगीं! प्रताप को उन्होंने छोड दिया। एक जान के बदले दूसरी जान! झाला ने अपनी जान देकर अधिक कीमती जान बचा ली! रक्त-नदी बह उठी। लेकिन, चित्तौड की स्वतन्त्रता देवी की प्यास न बुझी! अभी तो परीक्षा आरम्भ ही हुई है। प्रताप! एक किले के बाद दूसरा किला दो। अब किले नहीं रहे, तो जाओ पहाडियों और जगलों की खाक छानो। हैं! रसद बन्द हो गई, तो क्या हर्ज है? पत्ते कहीं नहीं गये, जगल का सामा और कोदों का कोई हाथ न पकड लेगा। आज यहाँ तो

कल वहाँ, घास की रोटियाँ, लेकिन खाते ही मुगल आ पहुचे। लडते भिडते निकल चलो ! सोने के बिछौने नहीं, कोई हर्ज नहीं ! बडों के लिये चट्टानें और बच्चों के लिये घास के पालने ही सही ! अन्धेरी रातें, धधकती दुपहरिया, जाडे का कडाका, वर्षा की रिमझिमाहट, आत्मा की आग और परमात्मा की उदासीनता— साथियों का मरते जाना और सैनिकों का कम होते जाना, कठिन तपस्या और कठोर व्रत ! एक दिन नहीं और दो दिन भी नहीं, एक साथ पचीस वर्ष तक।

(२)

यह कैसी चीत्कार ? चित्तौड की राजकुमारी के हाथ से एक वन-बिलाव घास पात की रोटी छीन ले गया। राजकुमारी चीख उठी। बिलाव के डर से नहीं, भूख के डर से, राजकुमारी— और रोटी के लिए तरसे ! लेकिन प्रताप—यह क्या? तुम्हारी आत्मा काँप क्यों उठी? लडकी की वेदना देखकर और परिवार के कष्टों से? शान्त हो और जरा विचारो ! देखो, वह तुम्हारे शत्रु अपने खीमों में घी के दीपक जला रहे हैं। क्यों ? तुम्हारी हिम्मत टूटती हुई देख कर। इन दीपकों के घी और बत्ती के साथ सच बताओ, तुम्हारा हृदय जला कि नहीं ? हाँ, जला, अब उस जले पर नमक छिडकने की जरूरत नहीं।

(३)

हो चुका ! बस, चित्तौड़ की पवित्र भूमि ! तुझे नमस्कार है। तुझे छोडता हूँ। लेकिन स्वतन्त्रता का पल्ला नहीं छोडता। जो था, सो सब इस देवी के अर्पण हो चुका। शरीर में जो हड्डियां बाकी हैं, वे भी उस के अर्पण हो चुकीं। जननी जन्मभूमि अन्तिम

दर्शन है। लो, आज्ञा दो।

प्रताप, आगे बढो! तुम्हारी सच्ची माता तुम्हें बुला रही है। हरिश्चन्द्र अपनी दासता के कर्त्तव्य में जब हद से ज्यादा आगे बढ गये थे, तब कहते हैं कि निराकार प्रभु ने आ कर उनका हाथ पकडा था। मेवाड की भूमि भी तेरा पैर पकड रही है। देख, उस का एक सपूत आगे बढता है। भामासाह तेरे पैर थामता है। देश को मत छोड, वह तुझे छोडने के लिए तैयार नहीं। भाग्य भी अभी तक तुझे छोडे था, लेकिन, अब वह प्रार्थना करता है कि तू उसे मत छोड। ले धन। २५००० आदमी इस धन से १२ वर्ष तक खा सकेंगे। तेरी तपस्या पूरी हो गई, और देश स्वतन्त्रता देवी स्वय तेरे पास आ रही है। तेरे साहस और तेरी दृढता तथा वीरता और उदारता के सामने उस का आसन डोल उठा है। देख, शान्ति मे वह मुस्कुरा रही है। उस के हाथो मे माला है और देख, वह तेरे गले में गिरती है।

(४)

महान पुरुष—निसन्देह महान पुरुष। भारतीय इतिहास के किस रत्न में इतनी चमक है? स्वतत्रता के लिए किसने इतनी कठिन परीक्षा दी? जननी जन्म भूमि के लिए किस ने इतनी तपस्या की? देशभक्त लेकिन देश पर एहसान जताने वाला नहीं, पूरा राजा लेकिन स्वेच्छाचारी नहीं। उसकी उदारता और दृढता का सिक्का शत्रुओं तक ने माना। शत्रु से मिले भाई शक्तिसिंह पर, उसकी दृढता का जादू चल गया। अकबर का दरबारी पृथ्वीराज उसकी कीर्ति गाता था। भील उस के इशारे के बन्दे थे। सरदार उस पर जानें न्योछावर करते थे। भामा साह ने उस के पैरो पर

सब कुछ रख दिया। विभीषण मानसिंह उस से नजर नहीं मिला सकता था। अकबर उस का लोहा मानता था। खानखाना उस की तारीफ में पद्य-रचना करना पुण्य-कार्य समझता था। जानवर भी उसे प्यार करते थे,और घोड़े चेतक ने उस के ऊपर अपनी जान,न्योछावर करदी। स्वतन्त्रतादेवी को वह प्याराथा, और वह उसे प्यारी थी चित्तौड का वह दुलारा था और चित्तौड की भूमि उसे दुलारी थी। उदार इतना कि बेगमें पकडी गई और सम्मान सहित वापिस भेज दी गईं। सेनापति फरीदखाँ ने कसम खाई कि प्रताप के खून से मेरी तलवार नहायेगी,प्रताप ने सेनापति को पकड कर छोड दिया।

(५)

अन्तिम काल! जान नहीं निकलती! लेकिन राणा जी, क्यों? मुझे विश्वास नहीं कि मेरे बाद चित्तौड की स्वाधीनता कायम रह सके। क्यो? राजकुमार दृढ न सही? मेवाड के सोलह सरदार, राणा जी, कसम खाते हैं कि हम अपने खून से स्वतन्त्रता के उस बीज को जो तू ने बोया, सींचेंगे। शान्ति हुई, और उस की आत्मा शरीर से बाहर होकर स्वतन्त्रता देवी की पवित्र गोद में जा विराजी। प्रताप! हमारे देश का प्रताप! हमारी जाति का प्रताप दृढता और उदारता का प्रताप! तू नही है, केवल तेरा यश और कीर्ति है। जब तक यह देश है और जब तक ससार में दृढता, उदारता, स्वतत्रता और तपस्या का आदर है, तब तक हम क्षुद्र प्राणी ही नहीं, सारा ससार तुझे आदर की दृष्टि से देखेगा। ससार के किसी भी देश में तू होता, तो तेरी पूजा होती और तेरे नाम पर लोग अपने को न्योछावर करते। अमेरिका मे होता, तो वाशिंगटन और इब्राहेम लिंकन से तेरी किसी तरह कम पूजा न होती।

साहित्य की महत्ता

(श्रीयुत महावीर प्रसाद द्विवेदी)*

ज्ञान राशि के सञ्चित कोश ही का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी, यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो वह रूपवती भिखारिनी की तरह कदापि आदरणीय नहीं हो सकती। उसकी शोभा, उसकी मान मर्यादा उसके साहित्य ही पर अवलम्बित रहती है। जाति विशेष के उच्च-नीच भावों का, उस के धार्मिक विचारो और सामाजिक संगठन का, उस के ऐतिहासिक घटनाचक्रो और राजनैतिक स्थितियो का प्रतिबिम्ब देखने को यदि कहीं मिल सकता है तो उस के ग्रन्थ साहित्य ही में मिल सकता है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति या निर्जीविता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एक मात्र साहित्य है। जिस जाति-विशेष में साहित्य का अभाव या उसकी न्यूनता आपको देख पड़े, आप वह निसन्देह निश्चित समझिए कि वह जाति असभ्य किं वा अपूर्ण सभ्य है जिस जाति की सामाजिक

---

*जन्मस्थान—दौलत पुर जिला राय बरेली। जन्म काल स० १८६४

आप हिन्दी साहित्य के आचार्य है। अपने समय में अपने जोड़ के आप एक ही लेखक हैं। आप का प्राय सारा जीवन हिन्दी की सेवा में ही बीता है। लग भग बीस वर्षो तक आपने "सरस्वती" का संपादन किया इस काल में सरस्वती हिन्दी की सर्वोत्तम मासिक पत्रिका रही। आपके द्वारा लिखित सम्पादित तथा अनुवादित ग्रन्थों की सख्या ६० से ऊपर हैं।

अवस्था जैसी होती है उसका साहित्य भी ठीक वैसा ही होता है। जातियों की क्षमता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है तो उनके साहित्य रूपी आईने ही में मिल सकती है। इस आईने के सामने जाते ही हमें यह तत्काल मालूम हो जाता है कि अमुक जाति की जीवनशक्ति इस समय कितनी या कैसी है और भूतकाल में कितनी और कैसी थी। आप भोजन करना बन्द कर दीजिए या कम कर दीजिए आपका शरीर क्षीण हो जायगा और अचिरात् नाशोन्मुख होने लगेगा। इसी तरह आप साहित्य के रसास्वादन से अपने मस्तिष्क को वञ्चित कर दीजिए, वह निष्क्रिय हो कर धीरे धीरे किसी काम का न रह जायगा। बात यह है कि शरीर के जिस अङ्ग का जो काम है वह उससे यदि न लिया जाय तो उस की वह काम करने की शक्ति नष्ट हुए बिना नहीं रहती। शरीर का खाद्य भोजनीय पदार्थ है और मस्तिष्क का खाद्य साहित्य। अतएव यदि हम अपने मस्तिष्क को निष्क्रिय और कालान्तर में निर्जीव सा नहीं कर डालना चाहते तो हमें साहित्य का सतत सेवन करना चाहिए और उसमें नवीनता तथा पौष्टिकता लाने के लिए उस का उत्पादन भी करते जाना चाहिए। पर याद रखिए विकृत भोजन से जैसे शरीर रुग्ण होकर बिगड़ जाता है उसी तरह विकृत साहित्य से मस्तिष्क भी विकार-ग्रस्त होकर रोगी हो जाता है। मस्तिष्क का बलवान् और शक्तिसम्पन्न होना अच्छे ही साहित्य पर अवलम्बित है। अतएव यह बात निर्भ्रान्त है कि मस्तिष्क के यथेष्ट विकास का एक मात्र साधन अच्छा साहित्य है। यदि हमें जीवित रहना है और सभ्यता की दौड़ में अन्य जातियों की बराबरी करना है तो हमें श्रमपूर्वक बड़े उत्साह से

सत्साहित्य का उत्पादन और प्राचीन साहित्य की रक्षा करनी चाहिए और यदि हम अपने मानसिक जीवन की हत्या करके अपनी वर्तमान दयनीय दशा में पडा रहना ही अच्छा समझते हों तो आज ही इस साहित्य सेवा के आडम्बर का विसर्जन कर डालना चाहिए।

आख उठा कर जरा और देशो तथा और जातियों की ओर तो देखिए। आप देखेंगे कि साहित्य ने वहा की सामाजिक और राजकीय स्थितियो मे कैसे कैसे परिवर्तन कर डाले हैं। साहित्य ही ने वहा समाज की दशा कुछ की कुछ कर दी है, शासन प्रवन्ध में बडे बडे उथल-पुथल कर डाले हैं, यहा तक कि अनुदार धार्मिक भावो को भी जड से उखाड फेंका है। साहित्य मे जो शक्ति छिपी रहती है वह तोप, तलवार और वम के गोलों में भी नहीं पाई जाती। योरोप में हानिकारिणी धार्मिक रूढियो का उत्पाटन साहित्य ही ने किया है। जातीय स्वातन्त्र्य के बीज उसी ने बोये हैं, व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के भावों को भी उसी ने पाला पोसा और बढाया है, पतित देशों का पुनरुत्थान भी उसी ने किया है। पोप की प्रभुता को किसने कम किया? फ्रास में प्रजा की सत्ता का उत्पादन और उन्नयन किस ने किया है? पादाक्रान्त इटली का मस्तक किसने ऊंचा उठाया? साहित्य ने, साहित्य ने, साहित्य ने। जिस साहित्य में इतनी शक्ति है जो साहित्य मुर्दों को भी जिन्दा करने वाली सजीवनी ओपधि का आकर है, जो साहित्य पतितो को उठाने वाला और उत्थितों के मस्तक को उन्नत करने वाला है उसके उत्पादन और सवर्धन की चेष्टा जो जाति नहीं करती वह अज्ञानान्ध-कार के गर्त में पड़ी रह कर किसी दिन अपना अस्तित्व ही खो

बैठती है। अतएव समर्थ होकर भी जो मनुष्य इतने महत्वशाली साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि नहीं करता अथवा उससे अनुराग नहीं रखता वह समाजद्रोही है, वह देशद्रोही है, वह जातिद्रोही है किं बहुना वह आत्मद्रोही और आत्महन्ता भी है।

कभी कभी कोई समृद्ध भाषा अपने ऐश्वर्य के बल पर दूसरी भाषाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेती है जैसा कि जर्मनी, रूस, इटली आदि देशों की भाषाओं पर फ्रेञ्च भाषा ने बहुत समय तक कर लिया था। स्वय अंग्रेजी भाषा भी फ्रेञ्च और लैटिन भाषाओं के दबाव मे नहीं बच सकी। कभी कभी यह दशा राजनैतिक प्रभुत्व के कारण भी उपस्थित हो जाती है और विजित देशों की भाषाओं को जेता जाति की भाषा दबा लेती हैं। तब उनके साहित्य का उत्पादन यदि बन्द नहीं हो जाता तो उस की वृद्धि की गति मन्द जरूर पड जाती है। पर यह अस्वाभाविक दबाव सदा नहीं बना रहता। इस प्रकार की दबी या अध पतित भाषायें बोलने वाले जब होश मे आते हैं तब वे इस अनैसर्गिक आच्छादन को दूर फेंक देते हैं। जर्मनी, रूस, इटली और स्वय इङ्गलैंड चिरकाल तक फ्रेञ्च और लैटिन भाषाओं के माया जाल में फसे थे पर बहुत समय हुआ, उस जाल को उन्होंने तोड डाला। अब वे अपनी ही भाषा के साहित्य की अभिवृद्धि करते है कभी भूल कर भी विदेशी भाषाओं में ग्रन्थ रचना करने का विचार तक नहीं करते। बात यह है कि अपनी भाषा का साहित्य ही स्वजाति और स्वदेश की उन्नति का साधक है विदेशी भाषा का चूडान्त ज्ञान प्राप्त कर लेने और उसमें महत्व पूर्ण ग्रन्थ-रचना करने पर भी विशेष सफलता नहीं प्राप्त हो सकती और अपने देश को विशेष लाभ नहीं पहुच सकता।

अपनी माँ को नि सहाय, निरूपाय और निर्धन दशा में छोड कर जो मनुष्य दूसरे की माँ की सेवा शुश्रूषा में रत रहता है उस अधम को कृतघ्नता का क्या प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवल्क्य या आपस्तम्ब ही कर सकता है।

मेरा यह मतलब कदापि नहीं कि विदेशी भाषायें सीखनी ही न चाहिए। नहीं, आवश्यकता, अनुकूलता, अवकाश होने पर हमें एक नहीं, अनेक भाषायें सीख कर ज्ञानार्जन करना चाहिए, द्वेष किसी भी भाषा से न करना चाहिए, ज्ञान कहीं भी मिलता हो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। परन्तु अपनी भाषा और उसी के साहित्य को प्रधानता देनी चाहिए, क्यो कि अपना, अपने देश का, अपनी जाति का उपकार और कल्याण अपनी ही भाषा के साहित्य की उन्नति से हो सकता है। ज्ञान, विज्ञान, धर्म्म और राजनीति की भाषा सदैव लोकभाषा ही होनी चाहिए। अतएव अपनी अपनी भाषा के साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि करना सभी दृष्टियों से, हमारा परम धर्म्म है।

आशा

(श्रीचतुर सेन शास्त्री)*

आशा ! आशा ! अरी भली मानस ! जरा ठहर तो सही, सुन तो सही, कहा खींचे लिये जा रही हो ? इतनी तेजी से इतने जोर से ? आखिर सुनूं तो पड़ाव कितनी दूर है ? मंजिल कहा है ? ओर छोर किधर है ? कहीं कुछ भी तो नहीं दीखता ! क्या अन्धेर है ! छोड़, मुझे छोड़ । इस उच्चाकांक्षा से मैं बाज आया। पड़ा रहने—मरने दे, अब और दौड़ा नहीं जाता । ना—ना—अब दम नहीं रहा । यह देखो यह हड्डी टूट गई, पैर चूर चूर हो गये, सांस रुक गया, दम फूल गया । क्या मार ही डालेगी सत्यानाशिनी ? किस सब्ज बाग का झांसा दिया था ? किस मृगतृष्णा मे ला डाला मायाविनी ? छोड़ छोड़, मैं तो यहीं मरा जाता हूं, मेरी जान छोड़ । मैं यहीं पड़ा रहूंगा । भूख और प्यास सब मंजूर है । हाय, ! वह कैसी कुघड़ी थी जब मैं प्यारी शान्ति का हाथ छोड़, उस से पल्ला छुड़ा, उसे धक्का मार अन्धे की तरह—नहीं नहीं पागल की तरह—तेरे पीछे भागा था ? कैसी भग खा ली थी, कैसी कुमत गवाँई थी ? कहा है मेरी शान्ति ? कुछ भी तो पता नहीं—जीती भी है, या मर गई !

---

*आप प्रसिद्ध वैद्य हैं और दिल्ली के संजीवन औषधालय के संचालक हैं । हिन्दी में गद्य काव्य लिखने की प्रणाली प्राय आप ने ही चलाई है । आप के मुख्य ग्रन्थ—हृदय की परख, हृदय की प्यास, अन्तस्तल, और अनामस्वदेश हैं ।

क्या करता। तेरी मोह भरी चितवन, उन्मादक मुस्कराहट, और दिल को लोट पोट करने वाली चपलता ने मुझे मार डाला। मुझ पर, मेरे दिल पर, मेरी शान्ति पर, इन सब ने डाका डाला। शान्ति छुटी, सुख छुटा, घर बार छुटा, आराम छुटा, अब भी दौड़ बन्द नहीं ? अब भी मजिल पूरी नहीं ? तैंने कहा था, वहां एक करोड़ स्वर्गों का निचोड़ा हुआ रस सड़कों पर छिड़का जाता है। तैंने कहा था, शान्तियों का वहां ढलाई का कारखाना खुला हुआ है। तैंने कहा था, सुख के सात समुद्र भरे पड़े हैं। तैंने कहा था, रूप का वहां अतर खींचा रखा है। तेरे इतने प्रलोभनों में यदि मैं भटक गया तो भगवान् मेरा अपराध क्षमा करें। यहां तो मार्ग ही मार्ग है—मजिल का कहीं ठिकाना नहीं है। क्या जाने कहीं है भी या नहीं।

प्यास के मारे कण्ठ चिपक गया है। जीभ तालू से सट गई है। घर में कुए का ठण्डा जल था, उसे छोड़ अमृत के लोभ में निकला, तो प्यास पल्ले पड़ी। घर मे रोटियां तो थीं—जैसी भी थीं—मोहन भोग के लोभ में गधे की तरह वे छोड़ दीं, अब भूख के मारे आँखें निकल रही हैं। चटाई का बिछौना क्या बुरा था ? सिंहासन कहां है ? यहां चलते चलते पैर टूटगये हैं। वह बीहड़ मैदान, रेगिस्तान, नदी, नद, तालाब झील, जगल, बन, नगर, पहाड़, गुफा खोह, ऊबड़ खाबड़—ओफ बराबर तय किये आ रहा हू। अभी और भी तेरी उगली उठ रही है। तेरी तेजी बराबर जारी है। तू नहीं थकी ? पसीना भी नहीं आया ? होश हवाश बरा बर कायम है ? भीषण सुन्दरी! तू कौन है ? वही आगे को उगली उठा रही है। 'थोड़ी दूर और है' यही तेरा मन्त्र है। बढ़ी चली

जा रही है आँधी और तूफान की तरह। छोड दे मेरी उगली को छोड दे, नहीं तो मैं उगली काट डालूगा। थोडी दूर हो या बहुत दूर हो, बस मुझ से नहीं चला जाता। घुटने छिल गये, बाल पक गये। पेट कमर मे लग गया। कमर धरती पर झुक गई अब भी दया नही—अब भी आराम नहीं। रहने दे, मैं यही आराम करूगा। —यहीं गिरूगा, यहीं मरूगा—जा—छोड छोड।

लौट ही जाता शायद शान्ति मिल जाती। पर! पर! पर! लौटने का ठिकाना किधर है और आ किधर से रहा हूँ—कुछ भी तो नहीं मालूम। दौडा दौडा आ रहा हूँ—इधर देखा न उधर। आज से आ रहा हूँ? जन्म समाप्त हो चला। सारा समय मार्ग में ही बीत गया—फिर भी कहती है—'थोडा और।' लौटने दे। पर लौटने का समय कहाँ है? घर बहुत दूर है। इसकी राह जवानी से बुढापे तक की है। अब बूढा तो हो गया—जवानी अब कहाँ से आवेगी? अब लौटना व्यर्थ है। असम्भव है। तब? तब क्या यहीं मरना होगा? यही मार्ग में, काँटे और पत्थरो से भरी धरती में, हिसक जन्तुओं से भरे जगल में? हे भगवान्, जवानी से बुढापे तक, दौडने—मरने—सब कुछ त्यागने का—यही—यही —यही फल मिला? हाय!

फिर वही, "थोडी दूर और"। यह थोडी दूर कितनी है? सच तो बता, ईश्वर की कसम। अब तो वापस लौटने का समय ही नहीं है। प्रकाश का एक कण भी तो नहीं दीखता। तेरी आँखें मात्र चमकती हैं। इन आँखो के प्रकाश मे और कब तक चलूँ? ना—ना—अब दम नहीं है। मैं हाथ जोडूँ, हा हा खाऊँ, मुझे छोड दे। मरने को छोड दे। मुझे न सुख की हौंस है न जीने की।

क्या कहा ? मंजिल आ गई ? कहाँ ? किधर ? देखूँ ? इतना क्यों हसती है। मुझे हसना अच्छा नहीं लगता। ठहर। क्या सचमुच मंजिल आ गई ? यह जो तारा सामने चमक रहा है—वही क्या हमारा गन्तव्य स्थान है ? पर वह तो अभी दूर है। वहा तक पहुचने की ताव कहा है ? और पहुच कर वह भोग भोगने की शक्ति भी कहा रह गई ? रहने दे। अब एक पग भी न चलूँगा। चला भी न जायगा। इस का कोई उपयोग नहीं। पहुचना ही कठिन है और पहुच कर उस का उपयोग करना तो और भी कठिन—असम्भव है। भोग का समय, आयु, शक्ति सब इस मार्ग में समाप्त हो गई। अब क्या उस भोग को लालच की दृष्टि से—तरसते मन से—देखने को वहां जाऊ ? यह तो और भी कटु होगा। रहने दे,अब वहा जाने का कुछ आकर्षण नहीं रहा। तुम अक्षय यौवना हो, किसी अक्षययौवन को पकडो। और मैं तो यहीं इसी मार्ग में मरा। हे भगवान ! आज शान्ति मिलती ! आशा ! आशा ! तुम जाओ—जाओ ! हाय ! मैं मरा ! एँ ! एँ ! क्या, कहा ! वहा सब थकान व्याधि मिट जायगी ? शान्ति भी मिल जायगी ? नहीं ? ऐसा ! अच्छा भगवान ! चल ! अच्छा चल। पर कितनी दूर है ? है तो सामने ही न ? अच्छा और चार पग सही—चल—चल।

देखा मैने यहीं—मुक्ति थी
यहीं भोग था—यहीं मुक्ति थी
घर में ही सब योग युक्ति थी
घर ही था निर्वाण । ९ ।

फूल की कहानी

(श्रीयुत बदरीनाथ भट)*

दो दिन खेल गया उपवन में ।
रूप अनोखा लेकर आया, खेला कूदा हँसा-हँसाया ।
दिव्य सुरभि से वन महँकाया ॥
इससे बढ कर भला और क्या रक्खा है जीवन में॥१॥
गुण-सौन्दर्य देख कर प्यारा,रीझ गया माली हत्यारा ।
और किया डाली से न्यारा ॥
तोड ले चला दुष्ट बेचने दया न आई मन में । ॥ २ ॥
जीवित सब ने सीस चढाया, मृत होजाने पर ठुकराया ।
घर से बहुत दूर फिकवाया ॥
लगी रही दुनिया सदैव-सी अपने मन के धन में ।
दो दिन खेल गया उपवन में ॥३॥

---

*आप लखनऊ युनिवर्सिटी में हिन्दी के लेक्चरार हैं । अवस्था लगभग ४५ वर्ष है । आप अच्छे प्रतिभाशाली कवि और नाटककार हैं । दुर्गावती चुंगी की उमेदवारी, लबड़ घोंघो, विवाह विज्ञापन आदि कई प्रहसन और ने लिखे हैं । हिन्दी साहित्य के इतिहास पर 'हिन्दी' नाम की पुस्तक लिखी है ।

अस्ताचल में हस कर थोडा,
सूरज ने अपना मुख मोडा,
विहगों ने भी मुझ पर छोडा,
व्यग्य वचन का बाण। ४।

विधु ने नभ से किया इशारा,
अधोदृष्टि कर के ध्रुव तारा
तेरा विश्व-रूप रस सारा
करता था नित पान। ५।

हुआ प्रकाश तमोमय मग मे,
मिले मुझे तू तत्क्षण जग में,
तेरा हुआ बोध पग पग मे
खुला रहस्य महान। ६।

दीन हीन के अश्रु नीर मे
पतितों की परिताप पीर में
सध्या की चञ्चल समीर मे
करता था तू गान। ७।

सरल स्वभाव कृषक के हलमें
पतिव्रता रमणी के बल में
श्रम सीकर से सचित धन में
सशय शून्य भिक्षु के मन में
कवि के चिन्तापूर्ण वचन में
तेरा मिला प्रमाण। ८।

देखा मैंने यहीं—मुक्ति थी
यहीं भोग था—यहीं मुक्ति थी
घर में ही सब योग युक्ति थी
घर ही था निर्वाण । ९ ।

फूल की कहानी

(श्रीयुत बदरीनाथ भट्ट)*

दो दिन खेल गया उपवन में ।
रूप अनोखा लेकर आया, खेला कूदा हँसा-हँसाया ।
दिव्य सुरभि से वन महँकाया ॥
इससे बढ कर भला और क्या रक्खा है जीवन में॥१॥
गुण-सौन्दर्य देख कर प्यारा,रीझ गया माली हत्यारा ।
और किया डाली से न्यारा ॥
तोड ले चला दुष्ट बेचने दया न आई मन में । ॥ २ ॥
जीवित सब ने सीस चढाया, मृत होजाने पर ठुकराया ।
घर से बहुत दूर फिकवाया ॥
लगी रही दुनिया सदैव-सी अपने मन के धन में ।
दो दिन खेल गया उपवन में ॥३॥

---

*आप लखनऊ युनिवर्सिटी में हिन्दी के लेक्चरार हैं । अवस्था लगभग ३५ वर्ष है । आप अच्छे प्रतिभाशाली कवि और नाटककार हैं । दुर्गावती चुंगी की उमेदवारी, लवड़ घोंघो, विवाह विज्ञापन आदि कई प्रहसन और नाटक आप ने लिखे हैं । हिन्दी साहित्य के इतिहास पर 'हिन्दी' नाम की एक महत्व पूर्ण पुस्तक लिखी है ।

सूखी पत्ती

(श्रीयुत बदरी नाथ भट्ट)

पडी भूमि पर ठोकर खाती, पीला तेरा रग हुआ है,
सब रस रूप समय ने लूटा, चुरमुर सारा अग हुआ है ॥१॥

जिस पर रहती थी सवार नित, घुल घुल कर बातें करती थी,
वही हवा अब धूल फेंकती, उलटा सारा ढंग हुआ है ॥२॥

हुई चूर अभिमान नशे मे, सब पर हँसती झूम रही थी,
कौन पूछता है अब तुम को वह सुख-सपना भग हुआ है ॥३॥

सब के सिर पर चढी हुई थी, अब सब पैरो तले कुचलते,
ऊँचे चढ कर नीचा देखा, सभी रग बदरग हुआ है ॥४॥

जिस झोंरे पर झोंटे लेती, फूल फूल कर भूल रही थी,
उस ने भी है तुझे भुलाया, सारा प्रेम कुरग हुआ है॥५॥

अब क्या जुड सकती है तरु में ? किस की है तू कौन है तेरा?
इस दुनिया में कोई किसी के दुख मे कभी न सग हुआ है ॥६॥

"दुख" क्या है? 'अभिमान प्रति ध्वनि' है आशा का रूप निराशा,
है जीवन का हेतु मरण ज्यों मणि का हेतु भुजग हुआ है ॥७॥

पडी भूमि पर ठोकर खाती—

कृष्ण और अर्जुन

(श्रीयुत गयाप्रसाद शुक्ल "सनेही")❀

व्यर्थ न भ्रम में पड़ो हाथ से अस्त्र न छोड़ो,
फंसो मोह में नहीं, समर मे मत मुह मोड़ो।
घिरीं घटायें देख घड़ा मत अपना फोड़ो,
बाण उठाओ और चाप में उस को जोड़ो।
डटे रहो कर्तव्य पर, धर्म तुम्हारे साथ है,
सुयश लोक परलोक मे विजय तुम्हारे हाथ है ॥१॥

हो कर क्षत्रिय वीर स्वत्व तुम ने यदि छोड़ा,
टले धर्म से, प्रेम पाश मे बँध मुह मोड़ा।
पड़ जायेगा न्याय नीति का जग मे तोड़ा
तजो न अपना भाग बहुत हो या हो थोड़ा।
शाका चलता है सदा योद्धाओं के नाम का,
भीरु कहा के जगत मे जीना है, किस काम का ? ॥२॥

आत्मा जब है अमर, नहीं मरने का डर है,
डर भी हो तो रहा जगत मे कौन अमर है ?
मन को रोको, अगर भटकता इधर उधर है,
झुका, सहा अन्याय,भार धड़ पर वह सर है,
स्वत्व प्राण सम हैं सदे। नहीं त्याज्य, छोड़ो नहीं,
कातर होकर मोह वश, यो स्वराज्य छोड़ो नहीं ॥३॥

❀ जन्म काल सन् १८८३। आज कल आप कानपुर में रहते हैं। आप का उपनाम 'सनेही' और 'त्रिशूल' हैं। हिन्दी और उर्दू दोनों में आप अच्छी कविता करते हैं। भरत पुर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ जो कवि-सम्मेलन हुआ था उस के आप सभापति थे।

भारत माता की स्मृति

(श्री द्वारकाप्रसाद गुप्त "रसिकेन्द्र")*

तरस-तरस कर रह जाते हैं सुरगण तुझ में तन धरने को।
परमेश्वर तक प्रकटित होते तुझ में लीलाएँ करने को॥
हैं समर्थ तेरी ओषधियाँ कष्ट मृत्यु तक का हरने को।
शुष्क न कोई कर सकता है तेरे यश-रूपी झरने को॥
गिरी दशा तक में तव गौरव तेज जगत में है चमकाता।
कौन अधम होगा जो भूले तेरी स्मृति हे भारत माता॥

सुखप्रद सलिल समीर समय पर सब को तू प्रदान करती है।
प्रकृति निरन्तर तुझे सजाती सङ्गिनी हो सुषमा भरती है॥
भेद-भाव तू नहीं जानती, सब को गोदी में धरती है।
स्वयं यातना तू सहती है, पर औरों का दुख हरती है॥
तुझ सी पर-उपकारिणि कोई नहीं विश्व में है दिखलाता।
कौन अधम होगा जो भूले तेरी स्मृति हे भारत माता॥

स्वर्ण भूमि है, रत्न राशि है, कण कण में कमला का घर है।
देती तू है अन्न निरन्तर जिस पर जीवन ही निर्भर है॥
बसते हैं रस सभी, कहीं है नमक, कहीं पर तो शक्कर है।
सुन्दर फल-फूलों का घर-घर धन दे कर होता आदर है।
नदियाँ पूज्य पवित्र अनेकों—स्पर्शन से ही पाप नशाता।
कौन अधम होगा जो भूले तेरी स्मृति हे भारत माता॥

* जन्म काल सन १८८६, जन्म स्थान कालपी। आप अच्छे कवि और नाटककार हैं। आप की निम्न लिखित रचनायें प्रकाशित हुई हैं। आत्मार्पण (काव्य) सती सारन्धा (काव्य) और अज्ञातवास (नाटक)।

एक बूंद

(श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय)*

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से ,
थी अभी एक बूंद कुछ आगे बढ़ी
सोचने फिर फिर यही जी में लगी
आह क्यों घर छोड कर मैं यों कढ़ी॥१॥

देव मेरे भाग मे क्या है बदा,
मैं बचूंगी या मिलूंगी धूल में।
या जलूंगी गिर अंगारे पर किसी,
चू पडूंगी या कमल के फूल में ॥२॥

वह गई उस काल एक ऐसी हवा
वह समुन्दर ओर आई अनमनी
एक सुन्दर सीप का मुंह था खुला
वह उसी में जा पडी मोती बनी ॥३॥

लोग यों ही हैं झिझकते सोचते,
जब कि उन को छोडना पडता है घर।
किन्तु घर का छोडना अक्सर उन्हें,
बूंद लौं कुछ और ही देता है कर॥४॥

---

* जन्म काल १८६५ ई० । आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली के महाकवि हैं । आप का 'प्रिय प्रवास' नामक महाकाव्य काफी प्रसिद्ध हुआ है । देव बाला नाम का एक उपन्यास आपने ठेठ हिन्दी में लिखा है । 'चुभते चौपदे' और चोखे चौपदे नामक आप के दो और पद्य ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं ।

फूल और काँटा

(श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय)

हैं जनम लेते जगह में एक ही।
एक ही पौदा उन्हें है पालता ॥
रात मे उन पर चमकता चाँद भी।
एक ही सी चाँदनी है डालता ॥१॥
मेह उन पर है बरसता एक सा।
एक सी उन पर हवायें हैं बही ॥
पर सदा ही यह दिखाता है हमें।
ढङ्ग उन के एक से होते नहीं ॥२॥
छेद कर काँटा किसी की उँगलियाँ।
फाड़ देता है किसी का वर बसन ॥
प्यार- डूबी तितलियों का पर कतर।
भौंर का है बेध देता श्याम तन ॥३॥
फूल ले कर तितलियों को गोद मे।
भौंर को अपना अनूठा रस पिला ॥
निज सुगन्धों औ निराले रंग से।
है सदा देता कली का जी खिला ॥४॥
है खटकता एक सब की आँख मे।
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर ॥
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे।
जो किसी मे हो बड़प्पन की कसर ॥५॥

परमेश्वर की लीला

(पंडित श्रीधर पाठक)*

ध्यान लगा कर जो तुम देखो सृष्टी की सुघराई को।
बात बात में पाओगे उस ईश्वर की चतुराई को॥
ये नर भांति भांति के पंछी ये सब रङ्ग रङ्ग के फूल।
ये बन की लहलहीं लता नव ललित ललित शोभा के मूल॥

ये नदियां, ये झील सरोवर, कमलों पर भौंरों की गुञ्ज।
बड़े सुरीले बोलों से अनमोल घनी वृक्षों की कुञ्ज॥
ये पर्वत की रम्य शिखा और शोभा सहित चढ़ाव उतार।
निर्मल जल के सोते झरने सीमा-रहित महा विस्तार॥

छै प्रकार की ऋतु का होना नित नवीन शोभा के संग।
पाकर काल वनस्पति फलना, रूप बदलना रंग-बिरंग॥
चांद सूर्य की शोभा अद्भुत, बारी से आना दिन रात।
त्यों अनन्त तारा-मण्डल से सज जाना रजनी का गात॥

यह समुद्र का पृथ्वी तल पर छाया जो जलमय विस्तार।
उस में स मेघों के मण्डल हो अनन्त उत्पन्न अपार॥
लर्जन गर्जन घन मण्डल की बिजली वर्षा का सञ्चार।
जिस में देखो परमेश्वर की लीला अद्भुत अपरम्पार॥

---

* जन्म काल ११ जनवरी सन् १८६० । जन्मस्थान जोंधरी गांव, जिला आगरा । आप खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों में कविता करते थे । आपकी कविता की भाषा बड़ी ललित होती थी । प्राकृतिक सौन्दर्य के आप बड़े प्रेमी थे । दौर्भाग्य से १३ सितम्बर १९२८ को आप का देहान्त हो गया ।

उस कारीगर ने कैसा यह सुन्दर चित्र बनाया है।
कहीं पै जलमय कहीं रेतमय, "कहीं धूप कहीं छाया" है ॥
विविध रूप का अद्भुत अचरज जिस्के बीच समाया है।
कोई कहता "कुदरत" जिसको कोई कहता "माया" है ॥

प्रेम

(प० रामनरेश त्रिपाठी)*

यथा ज्ञान में शान्ति, दया मे कोमलता है।
मैत्री में विश्वास, सत्य में निर्मलता है ॥
फूलों में सौन्दर्य, चन्द्र मे उज्ज्वलता है।
सगति मे आनन्द, विरह मे व्याकुलता है ॥
जैसे सुख सन्तोष में, तप में उच्च विचार है।
यों मनुष्य के हृदय में, शुद्ध प्रेम ही सार है ॥

पर-निन्दा से पुण्य, क्रोध से शान्ति तपोबल।
आलस से सुख शक्ति, मोह से ज्ञान मनोबल ॥
निर्धनता से शील, लाज मिथ्याभिमान से।
दुराचार से देश, तेज निज कीर्ति-गान से ॥
इसी भाँति मे प्रेम भी, जो सुख का आधार है।
थोड़े ही सन्देह से, हो जाता निस्सार है ॥

---

* जन्मकाल सन् १८८९। जन्मस्थान कोइरीपुर जिला जौनपुर। आप भावुक कवि है। 'पथिक' 'मिलन' नाम के आप के दो खण्ड काव्य प्रकाशित हुए हैं। 'कविता कौमुदी' नाम से कई भागों में भिन्न भिन्न भाषाओं के मुख्य कवियों की कविताओंका संग्रह प्रकाशित कर आप पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुके है।

याचक

(श्रीयुत रामचरित उपाध्याय)*

"मुझे दीजिये कुछ" यों कह जब, याचक कर फैलाता है।
तभी शरीर काँपने लगता उस का स्वर घट जाता हैं॥
उसी समय उस के शरीर मे ये पाँचों छुट जाते हैं।
ज्ञान, तेज, बल और मान यश, अधम प्राण रह जाते हैं॥

उपालम्भ

(दीपक मे गिरते हुए पतगों के प्रति)

मरो मत उड कर व्यर्थ पतग।
ममता वश दीपक में गिर कर, क्यों होते हो तग॥ १॥
सुधा समझ कर कूद पडे तुम, रोक न सके उमग।
आशा हुई दुराशा मन की, झुलस गये सब अग॥ २॥
दाहक शक्ति देख दीपक की, हुए खूब तुम दग।
अब निज प्राण बचाने का कुछ, नहीं सूझता ढग॥ ३॥
पर फैला कर कलप रहे हो, हुआ मनोरथ भग।
अन्त काल है निकट तुम्हारा, बदन हुआ बदरंग॥ ४॥
पास न जाते हैं दीपक के, हैं जो चतुर विहग।
मूढ तुम्हारे सदृश न कोई देखा गया विहग॥ ५॥
हो मदान्ध तुम गिरे आप ही, गिरती है ज्यों चग।
कौन जलावेगा अपने को अधम तुम्हारे सग॥ ६॥

* जन्म स्थान गाजीपुर। जन्म काल सन् १८७२। पहले आप पुराने ढङ्ग की कविता करते थे। परन्तु पीछे आप ने खड़ी बोली को अपनाया और अब तक 'राम चरित चिन्तामणि' तथा 'देवी द्रौपदी' इत्यादि आठ ग्रन्थों से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि कर चुके हैं।

अभिशाप

(श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त)*

शान्ति स्थान महान कण्व मुनि के पुण्याश्रमोद्यान मे,
बाह्यज्ञान-विहीन, लीन अति ही दुष्यन्त के ध्यान मे।
बैठी मौन शकुन्तला सहज थी सौन्दर्य्य से सोहती,
मानो हो कर चित्र में खचित-सी थी चित्त को मोहती ॥

नाना दृश्य नये समक्ष उस के थे चित्तहारी वहीं—
आते थे पर लक्ष्य में न उस के वे एक कोई कहीं।
थे सर्वत्र विशाल नेत्र उस के दुष्यन्त को देखते,
पाण्डु-ग्रस्त समस्त वस्तु जग मे ज्यो पीत ही लेखते ॥

ऐसे अद्भुत ध्यान के समय में, विख्यात क्रोधी महा—
दुर्वासा मुनिवर्य्य धीर गति से दैवात पधारे वहाँ।
तेजोवन्त शरीर शुद्ध उन का अत्यन्त ही कान्त था,
मार्तण्डोपम वक्त्रमण्डल तथा उद्दण्ड भी शान्त था।

होने से प्रिय प्रेम मुग्ध उस ने आते न जाना उन्हें,
वैसे ही अतएव निश्चल रही मानो न माना उन्हें!
चिन्ता से जिस को न आप अपने देहादि का ज्ञान हो—
क्या आश्चर्य, न और का यदि उसे आते हुए ध्यान हो?

---

* जन्मकाल सन १८८६'। जन्म स्थान चिरगाव जिला झांसी। आप खड़ी बोली के महा कवियों में से हैं। आप की भारत भारती और जयद्रथ वध का हिन्दी साहित्य में जितना प्रचार हुआ है उतना आधुनिक किसी काव्य ग्रन्थ का नहीं हुआ। इनके अतिरिक्त आपने २० ग्रन्थ और लिखे हैं।

आया जान उन्हें, उसे पवन भी मानो जगाने लगी,
खींचा वस्त्र अनेक बार उसने, तो भी न बाला जगी।
थी प्यारे पति के समीप वह तो कैसे भला जागती?
तन्द्रा निश्चल प्रेम की सहज ही बोलो किसे त्यागती?

माना किन्तु महापमान अपने जी में उन्हो ने इसे,
क्रोधाधिक्य विचार युक्त रखता संसार में है किसे?
होते खिन्न कदापि वे न सहसा यो सोचते जो कहीं,
होता है मन एक ही मनुज के, दो चार होते नहीं॥

होके रुष्ट अतः अतीव मन मे पाके वृथा ताप वे,
कर्णक्रूर कठोर कण्ठ रव से देने लगे शाप वे।
बोले शीघ्र पसार पाणि अपना, यो रूक्ष वाणी गिरी—
ज्यों वाताहत मेघ से उपल की धारा धरा पै गिरी।

चिन्ता में जिस की निमग्न रह के देखा न तू ने मुझे
स्वामी मैं तप का,तथापि कुछ भी लेखा न तू ने मुझे।
आ देगा तव ध्यान ही न उस को, कोई कहे भी न क्यों,
पीछे पूर्व-कथा प्रमत्त जन को है याद आती न ज्यों॥

— यों क्रोधान्ध, विचार-शून्य मुनि ने अत्युग्रता से कहा
तो भी ध्यान हुआ न भङ्ग उस का सो पूर्व सा ही रहा
वर्षा में प्रिय चन्द्र-दर्शन-रता होती चकोरी जहा—
मेघो की घन घोषणा तब उसे देती सुनाई कहा!

थी दोनों सखियां समीप वन मे, उत्फुल्ल मालोपमा,
दौड़ीं वे सुन शाप और मुनि से माँगी उन्हो ने क्षमा।
होके शान्त किसी प्रकार तब वे बोले यही अन्त को—
"आवेगी सुध मुद्रिका निरख के उद्भ्रान्त दुष्यन्त को।"

अन्योक्ति माला

(श्रीयुत सैयद अमीर अली 'मीर')*

तोता तू पकड़ा गया, जब था निपट नदान।
बड़ा हुआ कुछ पढ़ लिया, तौ भी रहा अजान॥
तौ भी रहा अजान, ज्ञान का मर्म न पाया।
जीवन पर के हाथ, सौंप निज घर बिसराया॥
कहे 'मीर' समुझाय, हाय! तू अब लौं सोता,
चेता जो नहिं आप किया क्या पढ़ के तोता॥

बगला बैठा ध्यान में, प्रात जल के तीर।
मानौ तपसी तप करै, मल कर भस्म शरीर॥
मल कर भस्म शरीर, तीर जब देखी मछली।
कहैं 'मीर' असि चोंच, समूची फौरन निगली॥
फिर भी आवें शरण, बैर जो तज के अगला।
उस के भी तू प्राण, हरे रे! छी! छी! बगला॥

---

* जन्मकाल सन् १८७१। आप मध्य प्रान्त के एक सजीव कवि हैं। बूढ़े का ब्याह, बच्चे का ब्याह सदाचारी बालक, काव्य संग्रह, गद्य लेख माला आदि अपने कई पुस्तकें लिखी हैं।

कैदी होने के प्रथम, था अलि 'मीर' स्वतन्त्र।
उसे पवन ने छल लिया, कह के मोहन मन्त्र॥
कह के मोहन मन्त्र, तन्त्र सा फिर कुछ कर के।
उसे ले गई खींच, पास में गहरे सर के॥
पडा प्रेम में अचल, वहा लकडी का भेदी।
था जो कोमल कमल, बनाया उस ने कैदी॥

जा ने कीन्हों शमन है, मत्त मतङ्गन मान।
हाय दैव वश सिंह सो, पर्यो पींजरे आन॥
पर्यो पींजरे आन, स्वान के गन ढिग भूकैं।
विहँसैं ससा, सियार, कान पै आके कूकैं॥
'मीर' बात है सत्य, लोक में कहिगे स्याने।
का पै कैसो समय, कबै परिहै को जाने॥

कोयल तू मन मोह के, गई कौन से देस।
तो अभाव में काग मुए, लसनो परो भदेस॥
लसनो परो भदेस, वेस तोही सो कारो।
पै बोलत हैं बोल, महा कर्कस कटु न्यारो॥
कहैं मीर हे दैव, काग को दूर करो दल।
लावो फेर वसन्त, मनोहर बोले कोयल॥

ठुकरा दो या प्यार करो

(श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान)*

देव ! तुम्हारे कई उपासक, कई ढङ्ग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे, कई रङ्ग के लाते हैं॥
धूम धाम से साज बाज से, वे मन्दिर मे आते हैं।
मुक्तामणि बहुमूल्य वस्तुएँ, लाकर तुम्हे चढाते हैं॥
मैं ही हू गरीबनी ऐसी, जो कुछ साथ नही लाई।
फिर भी साहस कर मन्दिर मे, पूजा करने को आई॥
धूप दीप नैवेद्य नहीं है, झांकी का शृङ्गार नहीं।
हाय गले में पहिनाने को, फूलों का भी हार नहीं॥
स्तुति मैं कैसे करू कि स्वर मे, मेरे है माधुरी नही।
मन का भाव प्रगट करने को, मुझ मे है चातुरी नहीं॥
नहीं दान है नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई।
पूजा की भी विधि न जानती, फिर भी नाथ चली आई॥
पूजा और पुजापा प्रभुवर, इसी पुजारिन को समझो।
दान दक्षिणा और निछावर, इसी भिखारिन को समझो॥
मैं उन्मत्त प्रेम का लोभी, हृदय दिखाने आई हू।
जो कुछ है बस यही पास है, इसे चढाने आई हू॥
चरणों पर है अर्पण, इस को, चाहे तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो॥

---

* जन्मस्थान-प्रयाग, जन्मकाल सन १६०४। आप का विवाह खंडवा निवासी ठाकुर लक्ष्मणसिंह बी॰ ए॰ एल एल बी के साथ हुआ। स्त्री कवियों में आप का स्थान बहुत ऊंचा है आप की कविताए बड़ी भाव पूर्ण होती है।

सूक्ति-सुधा

(श्रीयुत मोहनलाल महतो गयावाल)*

चन्द्र खेलौना

मा क्यों मुझ को चन्द्र खेलौना लगता प्यारा ?
जाता उस की ओर नहीं क्यों ध्यान तुम्हारा ?
सुन बच्चे की बात कहा मा ने यों हँस कर—
—"लाल ! प्यार करती थी मैं भी उसको जीभर'
अब क्यों भूलूं दूरके, शशि के क्षणिक विनोद में,
खेल रहा है चन्द्र मा, जब तू मेरी गोद में।"

सरसों का सौजन्य

काटा हम ने खूब और पीटा मर मर कर
पेर पेर कर तेल निकाला तुझमें जी भर।
फिर दीपक में भर कर थोडा तूल मिलाया,
निर्दयता से खोद खोद कर तुम्हें जलाया।
हम ने तो आस्तित्व तक
नष्ट तुम्हारा कर दिया।
तुम ने अहा प्रकाश से
अखिल भुवन को भर दिया।

---

* जन्मस्थान रूपन्डीह, गया। जन्मकाल—सन् १९०२। आप कुशल चित्रकार हैं और प्रतिभाशील कवि भी। मानवीय अन्तरिक भावों का पूरा चित्र आपकी कविता में पाया जाता है आपकी 'निर्माल्य' और 'एक तारा' वे रचनाए प्रकाशित हो चुकी हैं।

उपदेश

(श्रीयुत लोचन प्रसाद पाण्डेय)*

जग में लाखों मनुज जन्म लेते मरते हैं।
तनु-पोषण के लिए विविध लीला करते हैं॥
पशु सम जन्म मनुष्य का, हो जाता है व्यर्थ।
जो रहते हैं अन्ध बन, निज सुख साधन-अर्थ॥
अर्थ के दास हो॥१

स्थिर हो जग में कौन सदा रहता है भाई।
फिरती कहा न कहो मृत्यु की दुखद दुहाई॥
क्षण क्षण भङ्गुरता विषम, दिखा रही है सृष्टि।
देख, करो हे भाइयो! खोल हृदय की दृष्टि॥
ग्रहण उपदेश कुछ॥२

दुर्लभ है नर देह इसे मत वृथा गँवाओ।
पा साधन का धाम विषय में मत लिपटाओ॥
जब कर सकते किसी का, तुम न लेश उपकार।
करते हो क्यों मूढ़ बन, तो पर का अपकार॥
स्वार्थ से लिप्त हो॥३

भङ्गुर है यह देह चार दिन का है जीवन।
करो न कलह-कलङ्क-पङ्क से अङ्ग विलेपन॥
त्यागो विष सम भाइयो! फूट, द्वेष, छल, क्रोध।
रहो प्रेम से सुख सहित, तजकर बन्धु विरोध॥
सदा फूलो फलो॥४॥

---

* जन्मस्थान बालपुर जिला बिलासपुर। जन्मकाल सन् १८८६। मध्यप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सेवियों में आप का स्थान बड़ा ऊंचा है। आप कवि भी हैं, और सुयोग्य लेखक भी। हिन्दी में आप की ११ कविता पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

अपने सपूत से

(श्री माखनलाल चतुर्वेदी) *

महलों पर कुटियों को वारो, पकवानों पर दूध दही,
राज पथों पर कुञ्जें वारो, मंचों पर गो लोक मही।
सरदारों पर ग्वाल और नागरियों पर ब्रज-बालाएँ,
हीर हार पर वार लाडले, वनमाली। वनमालाएँ।
छीनूंगी निधि नहीं, किसी सौभागिनी पुण्य प्रमोदा की,
लाल वारना नहीं किसी पर गोद गरीब यशोदा की।

षटपद

(श्री माखनलाल चतुर्वेदी)*

मैंने देखा था कलिका के, कण्ठ कालिमा देते।
मैंने देखा था फूलों में, उस को चुम्बन लेते॥
मैं ने देखा था लहरों में, उस को गूंज मचाते।
दिन ही में मैं ने देखा था, उस को सोरठ गाते॥

दर्पण पर शिर धुन धुन, मैंने देखा था बलि जाते।
अपने चरणों से ऋतुओं को, गिन गिन उसे बुलाते॥
किन्तु एक मैं देख न पाई, फूलों में बंध जाना।
और हृदय की डिबिया का, यों जीवित चित्र बनाना॥

---

* जन्मकाल सन् १८८८, निवासस्थान खंडवा (मध्यप्रदेश)। आप 'कर्मवीर' के सम्पादक हैं। भावुक कवि हैं। आपका लिखा "कृष्णार्जुन युद्ध" नाटक बहुत ही उत्कृष्ट है।

सूर्य-ग्रहण

(श्री नाथूराम शङ्कर शर्म्मा)*

रे ! रजनीश, निरकुश तूने, दिन नायक का ग्रास किया ।
नेक न धूप रही धरणी पै, घोर तिमिर ने वास किया ॥
जिसको पाय चमकता था तू, अधम उसी को रोक रहा ।
धिक् पापिष्ठ, कृतघ्न, कलङ्की, तेज त्याग तम पास किया ॥

मन्द हुआ सुन्दर मुख तेरा, छिटकी छवि तारागण की ।
अपने आप जाति में अपना, क्यों इतना उपहास किया ॥
जुगुनू जाग उठे जगल में, दिये नगर में जलवाये ।
मूँद महा महिमा महान की, अणु का तुच्छ विकास किया ॥

मगल मान निशाचर सारे, चरते और विचरते हैं ।
दिन को रूप दिया रजनी का, देव समाज उदास किया ॥
उष्ण-प्रभा बिन वन-पुष्पों से, सार सुगन्ध न कढते हैं ।
रोक चाल नैसर्गिक विधि की, दिव्य हवन का ह्रास किया ॥

चकित-चकोर चाह के चेरे, चिनगी चुगते फिरते हैं ।
मुख, पग, पंख, जलाने वाला, ज्वलित चन्द्रिकाभास किया ॥
श्वान, शृगाल, उलूक पुकारे, सकुचे कज, कुमोद खिले ।
जोड तोड चकई, चकवों के, खण्डित प्रेम-विलास किया ॥

---

* जन्मकाल १८५८ ई०, निवासस्थान हरदुआगज (अलीगढ), । आप वतमान काल के सर्व श्रेष्ठ कवियों में से हैं । कई सभा समितियों से आपको 'कविता-कामिनी-कान्त' आदि उपाधियां मिली है । आप की निम्न लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—
अनुराग रत्न, गर्भ रण्डा रहस्य, वायस विजय, शकर सरोज ।

दिन में चुगने वाली चिड़िया, हा ! अब कहीं न उड़ती हैं।
सब के उद्यम हरने वाला, सिद्ध तामसिक-त्रास किया॥
नाम सुधाकर है पर तेरी, लघुता विष बरसाती है।
विरहानल को भड़काने का, अति निन्दित अभ्यास किया॥

छुटने लगी छूत अब तेरी, उकसी कोर प्रभाकर की।
फिर दिन का दिन होजावेगा, हट ! क्यों वृथा प्रयास किया॥
दिव्य उजाला देकर तुझको, परसों फिर चमकावेगा।
कहदे कब सविता स्वामी ने, श्रीहत अपना दास किया॥

बुद्ध-चिन्त

(श्रीयुत रामचन्द्र शुक्ल)

"रथ बढ़ाओ, लखैं, छन्दक ! आज हम दै ध्यान
और सुखमय जगत यह, नहिं रह्यो जाको ज्ञान।"

फाटकन सों होत आगे चल्यो रथ गभीर।
सोहती दोउ ओर पथ के लगी भारी भीर।
करत अपने कुंवर को मिलि सकल जयजयकार।
हैं लखात प्रसन्नमुख सब नृपवचन अनुसार।

---

* जन्मकाल सन् १८८४। निवासस्थान काशी। आप हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित, प्रतिभाशाली कवि तथा ऊंचे दरजे के समालोचक हैं। आप ने बुद्धचरित इत्यादि ११ ग्रंथ लिखे हैं। आज कल आप हिन्दू-विश्व-विद्यालय काशी में हिन्दी के प्रोफेसर हैं।

किंतु वाही समय निकस्यो झोपडी सों आय ।
एक जर्जर वृद्ध पथ पै धरत डगमग पाय ।
फटे मैले चीथरे तन पै लपेटे घोर,
जाति काहू की न भूलिहु दृष्टि जाकी ओर ।

त्वचा झुर्रीभरी सूखी खाल सी दरसाति,
झूलि पजर पै रही पलहीन काहू भाँति।
नई वाकी पीठ है दबि बहु दिनन के भार ।
धँसी आखिन सों बहै कीचड तथा जलधार ।

खडो हाथ पसारि, कफ सों गयो कठ रुधाय,
कठिन पीडा सों कहरि पुनि कह्यो "कछु मिलि जाय।"
किन्तु ताहि ढकेलि पथ सो कह्यो लोग रिसाय
"भाग ह्याँ सो, नाहि देखत कुवर हैं रहे आय ?"

कहत कुवर पुकारि " हैं हैं । रहन क्यो नहिं देत ?"
फेरि बूझत सारथी सों करत कर सकेत—
'कहा है यह ? देखिबे मे मनुज सो दरसात,
विकृत, दीन, मलीन, छीन कराल औ नतगात ।"

दियो उत्तर सारथी तब "सुनौ, राजकुमार,
वृद्ध नर यह और नहि कछु, जाहि जीवन भार,
रही चालिस वर्ष पहिले जासु सूधी पीठ,
रहे अग सुडौल सब औ रही निर्मल दीठ ।

लियो जीवन को सबै रस चूसि तस्कर काल,
हर्‌यो बल सब, फेरि मति गति कर्‌यो याहि बिहाल।
भयो जीवनदीप याको निपट तैलविहीन,
रहि गयो नहिं सार कछु, अब भई ज्योति मलीन।"

कुवर पूछ्‌यो "कहा, याही गति सबै की होय,
मिलत अथवा कहुँ ऐसो एक सौ मे कोय ?"
कह्यो छंदक 'सबै याही दशा मे दरसाँय,
जियत एते दिनन लौं जो जगत में रहि जाँय।"

आयौ फिरि सिद्धार्थ कुवर निज भवन ताहि छन,
सोचत यह सब उदासीन अत्यन्त खिन्नमन।
यशोधरा दुखभरी परी चरनन पै आई,
रोवति पूछ्यो "नाथ रहे क्यों सुख नहिं पाई ?"

कह्यो कुवर "सुख लहौं सोइ खटकत मन माहीं
ह्वै हैं याको अंत अनसि, कछु संशय नाहीं
ह्वै हैं बूढे, यशोधरे। हम तुम दिन पाई,
नमित-गात, रसरूप-रहित, सब शक्ति गँवाई।

यहै जानि मम हृदय बीच शंका है छाई।
सोचौं, कैसो है कराल यह काल कसाई।
कैसे यासों यौवनरस हम सकें बचाई ?"
नाहिं कुवर को चैन बैठि सब रैन बिताई।

———

शैव्या-विलाप

(श्री जगन्नाथ प्रसाद "रत्नाकर")*

हाय हमारौ लाल लियौ डसि लूटि विधाता ।
अब काकौ मुख जोहि मोहि जीवै यह माता ॥
पति त्यागैं हू रहे प्रान तव छोह सहारे ।
सो तुमहूँ अब हाय विपति मैं छाँडि सिधारे ॥

अबहि साँझ लौं तौ तुम रहे भली विधि खेलत ।
औचकहीं मुरझाइ परे मम भुज मुख मेलत ॥
हाय न बोले बहुरि, इतोही उत्तर दीन्हौ ।
"फूल लेत गुरु हेत साँप हमकौं डसि लीन्हौ ॥"

गयौ कहाँ सो साँप आनि क्यों मोहु डसत ना ।
अरे प्रान किहिं आस रह्यौ अब वेगि नसत ना ॥
कबहु भाग-बस प्राननाथ जौ दरसन दैहैं ।
तौ तिनकौं हम बदन कहौ किहिं भाँति दिखैहैं ॥

उन तौ सौंप्यो हमैं दसा हम यह करि दीन्ही ।
हाय हाय क्यों सुमन चुनन की आयसु दीन्ही ॥
अहो नाथ अब तौ आवो इत नैंकु कृपा करि ।
लेहु निरखि निज हृदय खंड कौ बदन नैन भरि ॥

---

* जन्म काल १८६६ । जन्म स्थान-काशी । आप व्रजभाषा के सं[...] मान्य कवि हैं । हाल ही में आप को 'गंगावतरण' काव्य पर हिन्दुस्तानी एकेडमी और और काशी नागरी प्रचारिणी सभा से सर्व प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुए हैं ।